महाभारत के पात्र ८
पितामह
भीष्म

महाभारत के पात्र :: ६

पितामह भीष्म

नानाभाई भट्ट

१९८९

सस्ता साहित्य मण्डल प्रकाशन

प्रकाशक
यशपाल जैन
मंत्री, सस्ता साहित्य मण्डल
एन-७७, कर्नॉट सर्कस, नई दिल्ली-११०००१

●

नवीं बार : १९८९
मूल्य : रु० ४/-

●

मुद्रक
विजयालक्ष्मी प्रिंटिंग वर्क्स,
के-६, लक्ष्मी नगर, दिल्ली-९२

प्रकाशकीय

व्यक्ति के जीवन में विचारों का बड़ा महत्व होता है। जैसे विचार होते हैं, वैसा ही मनुष्य बन जाता है। स्वस्थ विचारों के लिए स्वस्थ साहित्य की बड़ी आवश्यकता होती है। उसके पठन-पाठन के साथ मनन करना और उन विचारों को जीवन में उतारना भी अत्यन्त आवश्यक होता है।

महाभारत ऐसे विचारों से ओतप्रोत है, जो हमें जीवन के धर्म और कर्तव्य की जानकारी कराते हैं। गुजराती के विख्यात लेखक नानाभाई भट्ट ने उसके प्रमुख पात्रों का चरित्र-चित्रण करके पाठकों को बड़े ही सहज और सुन्दर ढंग से बहुत ही प्रेरणादायक सामग्री प्रदान की है।

इस माला में ग्यारह पुस्तकें हैं। अपने ढंग की वे निराली हैं। प्रत्येक पात्र पाठकों को चिन्तन के लिए विवश कर देता है।

प्रस्तुत पुस्तक में पितामह भीष्म के चरित्र पर प्रकाश डाला गया है। पाठक जानते हैं कि उनके जीवन में कितने उतार-चढ़ाव आये। उनसे हम बहुत-कुछ सीख सकते हैं।

इस माला की सभी पुस्तकें महत्वपूर्ण हैं। आशा है, पाठक उन्हें चाव से पढ़ेंगे।

—मंत्री

अनुक्रम

□

□ □

पितामह भीष्म

१ / गंगा-पुत्र

"देवी, जरा ठहरो !"

गङ्गा माता का गहन जल मन्द-मन्द बह रहा था। चारों ओर अँधेरा छाया था। किनारे के वृक्ष धीरे-धीरे हिल रहे थे। दूर से रह-रह कर गीदड़ों की आवाज सुनाई देती थी। प्रवाह की सीमा के बाहर रेत का लम्बा मैदान फैला पड़ा था।

किनारे पर बसी राजधानी में से एक स्त्री दौड़ती हुई आई। उसके शरीर का रंग गोरा था, सिर के बाल बिखरकर सीने पर फैल रहे थे, पैरों में तेजी और हाथों में हाल ही का पैदा हुआ एक बच्चा था।

वह किनारे पर पहुंची, बालक को कपड़े में लपेटकर नीचे रखा, अपने बाल ठीक किये, साड़ी को समेटकर लाँग लगाई और बालक को उठाने को झुकी ही थी कि पीछे से आवाज आई "देवी, जरा ठहरो !"

जैसे विजली का झटका लगा हो, वह स्त्री चौंक उठी और तुरन्त ही पीछे की ओर देखकर बोली, "महाराज शान्तनु, आप यहां कहां ?"

"देवी इस बालक को तुम नहीं मार सकतीं", शान्तनु ने दृढ़ता के स्वर में कहा।

"अच्छी बात है, महाराज लीजिए! संभालिये अपने पुत्र को।

लेकिन अब हम दोनों का सह-जीवन इसी क्षण से समाप्त होता है।" देवी गङ्गा ने कहा।

"देवी! यह बालक हमारी आठवीं सन्तान है। अपने एक नहीं, सात पुत्रों को तुमने जल-समाधि दे दी। यह सब मैं मूक बनकर देखता रहा। अपने पुत्रों को अपने से अलग करते हुए मुझ पर क्या बीती होगी, क्या तुम्हें इसका पता है? आज इस आठवें पुत्र को भी जब तुम प्रवाहित करने निकलीं तो मैं अपना धीरज बनाये नहीं रख सका। जीवन के सार रूप अपने प्रिय पुत्र के लिए इतना-सा अनुभव करना भी क्या कोई अपराध है?" महाराज शान्तनु ने व्यथित हृदय से कहा।

"महाराज, इस दृष्टि से देखा जाय तो आपने आज तक कुछ नहीं कहा, यही अपराध है। आज तो आपने अपना कर्तव्य पालन किया है।" गंगा ने शान्ति से जवाब दिया।

"तब तुम यह कहकर कि अपना सह-जीवन आज से समाप्त होता है, मुझे व्यर्थ ही दुःखी क्यों करती हो?" शान्तनु ने पूछा।

"महाराज, आपने मेरा आशय नहीं समझा।" गंगा ने कहा, "विवाह से पहले ही मैंने आपसे शर्त की थी कि 'मैं जो कुछ भी करूँ, आप उसमें बाधा नहीं डालेंगे और उसी प्रकार आप उस विषय में मुझसे कुछ पूछेंगे भी नहीं 'कहिये, यह बात ठीक है या नहीं?"

"हाँ, तुम्हारी यह शर्त जरूर थी। किन्तु तुम जैसी धर्म-पत्नी अपने पुत्रों को ही मार डालेगी और मुझे अपनी जबान पर ताला लगा लेना पड़ेगा, इस बात की तो मुझे स्वप्न में भी कल्पना नहीं हुई थी। यदि इसकी कल्पना हुई होती तो वचन देने से पहले दस बार सोचता।" महाराज शान्तनु ने कहा।

"महाराज, यह सब तो आज कहा जाता है। उस दिन तो आपका मन मुझ पर मोहित था, इसलिए वचन के परिणाम की आपके मन में कल्पना ही नहीं हो सकती थी। लेकिन महाराज, आपने वचन दिया है, अतः अब तो उसका पालन होना ही चाहिए। आगे पहले से सोच-समझकर वचन देने का ध्यान रखिये। गंगा ने दृढ़ स्वर में कहा।

शान्तनु से रहा न गया। बोले, "आज तक कभी जबान नहीं खोली और आज एक बार खोली, उसीपर सह-जीवन समाप्त ? तुम्हारे प्रति मेरा स्नेह अन्धा है, क्या इसीसे कहीं डरा तो नहीं रही हो ?"

गंगा ने कहा, "नहीं नहीं, महाराज ! मैं कितनी ही कठोर क्यों न होऊँ, फिर भी हूं तो स्त्री ही। हमारा हृदय कितना कोमल है, कठोर हृदय पुरुषों को इसका पता न कभी लगा है, न लग सकेगा। महाराज! आपने तो आठवें पुत्र के लिए धीरज गंवाया; किन्तु अपने हाथों सात पुत्रों को जल में विसर्जन करते हुए मेरे—उनकी जननी के—दिल की क्या दशा हुई होगी, यह भी आपने कभी सोचा ? महाराज ! मैं देव-पुत्री हूं। देवकुलों में बालक कितने महंगे मोल के होते हैं, आपको इसका पता नहीं। आप आर्यों को इन बालकों का महत्व तो अभी भी सीखना है। किन्तु महाराज, मेरे वचनों पर विश्वास रखिये; किसी ईश्वरीय संकेत से प्रेरित होकर ही मैंने अपने सात पुत्रों को जल-समाधि कराई; उसी गूढ़ संकेत से प्रेरित होकर मैंने आपसे विवाह किया था और उसी गूढ़ संकेत से प्रेरित होकर मैं आज आपसे विलग हो रही हूं।"

'देवी! तुम यह क्या कहती हो?" शान्तनु ने विह्वल होकर

कहा, "तुम्हारे बिना मैं जीवित कैसे रह सकूंगा ? तुम कहो तो मैं अपनी कही हुई बात को वापस ले लूं और इस पुत्र का भी तुम्हें जो कुछ करना हो, खुशी से करो। किन्तु मुझे इस तरह न छोड़ो।"

गंगा ने गम्भीर स्वर में जवाब दिया, "महाराज, इस प्रकार क्यों घबराते हैं ? मैं तो गंगा हूं। सामने जो बरफ के पहाड़ दिखाई देते हैं, वहाँ से मेरा जन्म हुआ है। इस जगह जब मनुष्य का नाम-निशान न था, उस समय से मैं इस प्रदेश में विचरती हूं। आज आप जहां खड़े हैं और जिस जगह आप का हस्तिनापुर बसा हुआ है, वहाँ एक समय समुद्र लहरें मारता था। फिर समुद्र वहाँ से हटा, लेकिन उस जगह एक गढ़ा हो गया। पिता की गोद में से खिसकती-खिसकती मैं इस भारी गड्ढे में गिरी तो वर्षों तक निकल न सकी। पिता के घर से ला-लाकर मैंने वर्षों तक इसमें मिट्टी डाली तब कहीं मैं इस गड्ढे से बाहर निकल सकी। यह तो युग-युगान्तर की बात है। उसके बाद तो इस प्रदेश में मनुष्य आये, जाने कितने ही आए और गये। उनके आवागमन का लेखा मेरे गर्भ में संग्रहीत है, उसे समझने वाला कोई पैदा होगा तो पढ़ सकेगा। क्यों महाराज, आँखें क्यों बन्द कर ली हैं ?"

"तुम जो कह रही हो, कहे जाओ। तुम्हारे कथन को समझने के लिए मेरा मन गहराई में चला गया था।" शान्तनु ने कहा।

गंगा ने आगे कहा, "महाराज, हम सभी बहनें इसी श्वेत पर्वत पर से निकली हैं। इस प्रदेश पर आप जो सिद्ध, ऋषि-मुनि, दानी और पण्डित आदि देखते हैं, यह सब हमारे ही पानी

का प्रताप है। मैं समूचे आर्यावर्त की माता के समान हूं, फिर भी सदा कुँवारी हूं। करोड़ों मानव-प्राणी मेरे तट पर जिये और मरे हैं; हजारों महाराजाओं के रथों ने इस प्रदेश के चक्कर काटे हैं और चकनाचूर हुए हैं; लाखों सैनिक इस प्रदेश पर घूमे हैं और धूलि-धूसरित हुए हैं। किन्तु इन सबको काल अपने उदर में समा गया है। केवल मैं कुमारी बची हूं और बची रहने वाली हूं। अपने गर्भ में कितनी ही संस्कृतियों को मैंने पोषण दिया है और इन सब का तेज आप आर्यों को सौंप देने का मुझे ईश्वरीय आदेश है। महाराज, आपका यह पुत्र मेरा तेज इस प्रदेश में फैलावेगा। लीजिए इस पुत्र को। जाओ, चिरंजीव।" यह कहते हुए गंगा ने बालक को हाथ में लेकर आगे किया।

शान्तनु ने कहा, "देवी, मैंने तुम्हारी इस महिमा को पहचाना नहीं और केवल वासना की दृष्टि से ही तुम्हें देखा, इसके लिए मुझे क्षमा करो। तुम आर्यावर्त की माता हो, इस पुत्र को तुम्हीं पाल-पोस कर बड़ा करो, तुम्हारे अमृतपान से मेरा यह पुत्र देश को प्रकाशमान करेगा।"

गंगा ने जवाब दिया, "अच्छा तो ऐसा ही करूँगी महाराज, आप इसका नाम देवव्रत रखिये। इसे पाल-पोसकर मैं आपको सौंप दूँगी। अब आप महल में पधारिये।"

"किन्तु गंगा!" शान्तनु ने आर्द्र स्वर से कहा, "तुम्हारे बिना मैं सूने महल में किस तरह पैर रक्खूंगा? मेरी एक भूल को तुम क्षमा नहीं कर सकतीं?"

"महाराज, इसमें भूल का कोई प्रश्न ही नहीं है। अपना वचन अब पूरा हुआ। हम दोनों ने इतने समय तक गृहस्थ-जीवन बिताया, इतने पर भी यदि इच्छा ज्यों-की-त्यों रही तो

अब उसे जीतने के लिए दूसरा उपाय ढूंढ़ना होगा। महाराज, खिन्न न हों। प्रसन्न होकर जाइये।'' गंगा ने जवाब दिया।

शान्तनु ने विवश स्वर में कहा, "जैसा मेरा भाग्य ! देवी, शान्तनु का नमस्कार स्वीकार करो और अपने इतने लम्बे सहवास के अन्त में मुझे क्षमता दो, जिससे मैं तुम्हें पहचान न पाया, उसका प्रायश्चित्त कर सकूँ।

गंगा विनीत हो आई। बोली, "महाराज मैं तो आपकी दासी ठहरी। आपके पैर की धूलि सिर पर चढ़ाकर जीवित ही मुक्ति पा सकती हूं। किन्तु एक बात कहने को जी करता है।"

"क्या ?" शान्तनु ने पूछा।

गंगा ने कहा, "महाराज, मनुष्य विवाह करते समय चाहे जैसा घुमा-फिराकर बातें करता हो, पर वह विवाह करता है अधिकतर वासना-तृप्ति के लिए। आपने भी इसी तरह विवाह किया। किन्तु कुछ व्यक्ति भाग्यवश इस विवाह से वंचित रह जाते हैं, और उनकी वासना के शान्त न होने के कारण उन्हें इधर-उधर भटकते फिरना पड़ता है। महाराज, आपकी भी ऐसी ही दशा न हो, मैं ईश्वर से यही चाहती हूं। जिस दिन आपके मन में ऐसी वासना का उदय हो, उस दिन सावधान रहना और मेरे साथ बिताये दिनों को याद करके मन को बहलाने का प्रयत्न करना। मेरे चिन्ह के रूप में यह पुत्र तो आपके पास है ही। इतने वर्ष आपके पास रहकर मैं आपसे इतना भी न मांगू तो मेरी आत्मा को शान्ति नहीं मिलेगी, इसलिए यह माँगे लेती हूं।"

शान्तनु ने कहा, "हमसे तुमने माँगा क्या है ? यह तो मुझे जो करना चाहिए, वह तुमने पहले से ही बता दिया है। शान्तनु

अब और किसी पर दृष्टि नहीं डालेगा।"

"महाराज, अब मैं आपसे विदा लेती हूं।"

गंगा के इतना कहते ही प्रवाह के बीच पर्वत-जैसी लहर उठी और किनारे आकर गंगा और देवव्रत को लेकर वापस लौट गई।

शान्तनु किनारे पर खड़े देखते रहे।

२ / पिता की चिकित्सा

आसन पर बैठते हुए देवव्रत ने कहा, "पिताजी के बारे में मेरी चिन्ता दिन-पर-दिन बढ़ती जाती है। आपने कुछ पता लगाया?"

"कुमार, आप जैसा कहते हैं, उसी तरह मैंने प्रयत्न करके देख लिया है।" मन्त्री ने जवाब दिया।

"तब फिर बताओ, रोग का कुछ निदान हुआ। निदान हो जाने के बाद इलाज तो बहुत कठिन नहीं होता।" कुमार ने कहा।

मन्त्री गम्भीर स्वर में बोला, "कुमार, पता तो अवश्य लगा है, किन्तु मेरे बताने पर कुछ समय तक आप उस पर विश्वास नहीं करेंगे।"

"मन्त्री जी, वैद्य ने शास्त्रीय विधि से पूरी खोज करके जो बात निश्चित की हो, उससे मैं इन्कार कैसे कर सकूंगा?" देवव्रत ने कहा।

मन्त्री ने बताया, "वैद्य मुझसे कहते थे कि समाज के परम्परागत सम्बन्ध कुछ ऐसे हो जाते हैं कि हमारे मन अपने निकट

सम्बन्धी के विषय में विशेष प्रकार का विचार करने से ही इन्कार कर देते हैं। कुमार, क्या आप इस बात को मान सकेंगे की महाराज का मन एक धीवर की लड़की में उलझ गया है ?''

कुमार ने सिर हिलाते हुए कहा, ''महाराज शान्तनु के विषय में यह बात सम्भव नहीं हो सकती।''

मन्त्री बोले, ''देखो, राजकुमार, मैं कहता था न? इस बात को कौन जान सकता है कि मनुष्य के हृदय में कैसे-कैसे विकार छिपे पड़े हैं और उनमें से कौन-कौन से कब-कब जागकर उस पर सवार हो जायंगे।''

''तब फिर वैद्य ने यह बात किस तरह जानी ?'' कुमार ने शान्त होकर पूछा।

मन्त्री ने कहा ''सुनिये, वैद्य ने लगातार दस दिन तक महाराज से मुँह से स्वप्न में निकले हुए वचन सुने, उनकी चेष्टाएँ देखीं। दिन के समय महाराज के साथ देश-विदेश की अनेक बातें कीं। उनके अंग-रक्षकों से कई तरह के सवाल-जवाब किये और अन्त में इन सबके आधार पर उन्होंने अपना निर्णय मुझे कह सुनाया।''

''तब फिर महाराज स्वयं ही मुझ से यह बात क्यों नहीं कहते ?'' कुमार ने पूछा।

''कहें किस तरह ?'' मन्त्री ने कहा, ''लोक-लाज भी तो कोई चीज होती है। उसके भय के कारण मनुष्य मन की बात कह नहीं पाता। पर कुमार बात यहीं तक नहीं है। मुझे पता लगा है कि महाराज ने उस कन्या की माँग तक की थी।''

''फिर क्या हुआ ?'' कुमार ने उत्सुकता से पूछा।

''कन्या के पिता ने आपत्ति की।'' मन्त्री ने जवाब दिया।

"अपनी कन्या के रानी बनने पर मछुये ने आपत्ति की ?" कुमार ने आश्चर्य प्रकट करते हुए पूछा।

"कर सकता है।" मन्त्री ने जवाब दिया, "यह तो अपनी मरज़ी की बात है। मछुवे ने स्पष्ट कहा कि अगर महाराज यह वचन दें कि उसकी कन्या से उत्पन्न पुत्र ही हस्तिनापुर की राजगद्दी पर बैठेगा, तभी वह अपनी कन्या का विवाह उनके साथ करेगा।"

"पानी के जीवों पर अपनी गुजर करने वाले लोगों को भी ऐसा नशा चढ़ता है ? फिर महाराज ने इस पर क्या कहा ?" कुमार ने पूछा।

मन्त्री बोला, "महाराज क्या कहते ? अपना सिर खुजलाने लगे। आपको इस बात का क्या पता कि गंगादेवी के रहते महाराज किसी दूसरे की तरफ निगाह तक नहीं डालते थे। उस समय तो देवी का रौब रहता था। क्या मजाल थी कि महाराज कहीं और देख सकें। अब गंगादेवी के चले जाने से महाराज पर किसी का अंकुश नहीं रहा। फिर गद्दी के अधिकारी आप हैं, महाराज मछुवे को वचन दे ही कैसे सकते थे ? फिर भी उनसे उस नारी का मोह नहीं छूटता, इसीलिए दुःख पा रहे हैं। सारे शहर में इसी एक बात की चर्चा है और लोग खुले-आम कहते हैं कि महाराज को बुढ़ापे में यह क्या सूझा है ?"

कुमार देवव्रत ने कहा, "मन्त्रीजी, एक ओर तो मैं गद्दी का अधिकारी हूं और दूसरी ओर महाराज का चित्त चुराने-वाली धीवर की कन्या है और इन दोनों के बीच आज महाराज के मन में खींच-तान चल रही है। उनके रोग का यही कारण

है। महाराज का यह रोग धर्मानुकूल तो नहीं है, किन्तु काम वासना समाज के धर्माधर्म के इस प्रकार के बन्धन को कहाँ मानती है ? मन्त्रीजी, आपने महाराज को इस रोग से मुक्त करने का कोई उपाय भी सोचा है ?"

"हाँ, मैं तो सोच चुका हूं। आज महाराज को सत्य बात कहने वाला कोई नहीं है, अन्यथा उनसे कहना चाहिए कि वे इस कन्या के प्रति अपना मोह छोड़ दें।"

"उससे क्या महाराज अच्छे हो जायंगे ?" कुमार ने पूछा, "क्या आपका यह अनुभव है कि लोग काम के पाश से इस प्रकार छूट सकते हैं !"

"तो फिर क्या हो ? न मानें तो कुढ़ते रहें।" मन्त्री ने कहा।

"ठीक, वे न मोह को छोड़ सकते हैं, न ही मुझसे कुछ कह सकते हैं। किन्तु मन्त्रीजी, मुझे लगता है कि महाराज को इस पीड़ा से मैं मुक्त करा सकता हूं और मुझे वह करना ही चाहिए। मेरा यह कर्तव्य है ?"

"किस तरह ?" मन्त्री ने पूछा।

"मैं स्वयं हस्तिनापुर की गद्दी के अपने अधिकार को छोड़ दूं।" कुमार ने बड़ी गम्भीरता से कहा।

"कुमार ! आप यह क्या कह रहे हैं ? यह तो महाराज की वासना को बढ़ावा देना हुआ। वे बड़े आदमी हैं, इसलिए कोई उनके सामने बोल नहीं सकता। मामूली आदमी कोई इस तरह की बात करे तो लोग उसको कलंक लगावेंगे। आपको इसके लिए गद्दी क्यों छोड़नी चाहिए ?"

"मन्त्रीजी, आपका इस तरह का सोचना ठीक नहीं।"

कुमार ने कहा, "मेरे लिए तो प्रश्न यह है कि पिताजी का जीवन अधिक मूल्यवान् है अथवा हस्तिनापुर की गद्दी। यदि मैं पिता-जी को बचा सकूं तो हस्तिनापुर की गद्दी छोड़ देना मेरा धर्म है।"

"कुमार, यदि आप युवराज न होकर एक साधारण व्यक्ति होते तो मैं आपकी इस वृत्ति को आदरपूर्वक स्वीकार करता। किन्तु आपका प्रश्न केवल व्यक्तिगत प्रश्न नहीं है। आप गद्दी का त्याग करें, इसमें तो हस्तिनापुर की सारी प्रजा का प्रश्न निहित है। केवल पिता की वासना की तृप्ति के लिए आप हस्तिनापुर की गद्दी दूसरे के हाथों में सौंप दें, यह बात तो मुझे लोक-कल्याण की दृष्टि से अधर्म प्रतीत होती है।" मन्त्री ने गम्भीर स्वर में कहा।

"मन्त्रीजी, आप भूलते हैं।" कुमार ने कहा "जिसे प्रजा की सेवा करनी होगी, वह गद्दी पर न होते हुए भी प्रजा के अन्तःकरण में अपने लिए नया सिंहासन बना लेगा। केवल गद्दी पर बैठने वाले तो कदाचित् ही लोक-कल्याण कर सकते हैं। मैं गद्दी का अधिकार छोड़कर लोक-सेवा का अधिकार तो छोड़ नहीं रहा हूं। इसके विपरीत गद्दी से दूर रहकर तो जनता की कुछ अधिक ही सेवा कर सकूँगा। फिर किसे पता है कि मेरे भाग्य में ऐसी लोक-सेवा लिखी है या नहीं। आज तो पिता को रोगमुक्त करना, और वह गद्दी का अधिकार छोड़कर भी, मुझे अपना धर्म प्रतीत होता है।"

"कुमार, मुझे तो आपका विचार अच्छा नहीं लगता।" मन्त्री ने कहा, "महाराज आपका अधिकार छीनकर उस कन्या से विवाह करें, इसमें उनकी क्या शोभा रहेगी ? आप पितृ-

भक्ति से प्रेरित होकर ऐसा करते हैं, यह तो ठीक है; किन्तु इससे महाराज की आँखें कब खुलेंगी, इसका भी आपने विचार किया ?"

"महाराज की और संसार की आँखें खोलनी होंगी तो इसी उपाय से खुलेंगी।" कुमार ने धीमे स्वर में कहा, "किन्तु आँखें खुलें या न खुलें, मुझे अपने लिए जो धर्म प्रतीत होता है, उसी का पालन करना चाहिए। मेरा मन तो यही कहता है कि इस विषय में मुझे स्वयं ही मछुवे के पास जाकर उसकी कन्या की माँग करनी चाहिए और अपना निर्णय भी उसे ही बता देना चाहिए कि जिससे उसे सन्देह के लिए कोई कारण न रहे।"

"किन्तु आप पहले महाराज के कान तक तो यह बात पहुंचावें। मेरा तो ख्याल है कि महाराज स्वयं ही यह बात स्वीकार न करेंगे।" मन्त्री ने कहा।

"मुझे यदि गद्दी छोड़ने की कोरी बात ही करनी हो और वास्तव में गद्दी छोड़नी न हो, तब तो महाराज के कानों तक यह बात पहुंचाना ठीक है। किन्तु मुझे तो महाराज को नीरोग करना है, इसलिए मैं सीधा मछुवे के ही पास जाऊँगा और कन्या की माँग करूँगा। आपको मेरे साथ चलना होगा।" कुमार की वाणी में दृढ़ता थी।

"जैसी कुमार की आज्ञा।" मन्त्री ने कहा।

कुमार बोले, "मैं अभी तैयार होकर आता हूं, आप जरा यहीं बैठें। हम अभी चलेंगे।"

मन्त्री कुमार की ओर आश्चर्य और विचारपूर्ण मुद्रा में देखते रहे।

३ / भीष्म-प्रतिज्ञा

"क्या आज्ञा है, कुमार?" मछुवे ने हाथ जोड़कर पूछा।

कुमार देवव्रत ने कहा, "भाई मैं तो आज्ञा लेने आया हूं, देने नहीं। मेरे आने का कारण तो तुम समझ ही गये होगे। अपने पिता के लिए तुम्हारी कन्या की माँग करने आया हूं।"

मछुआ जरा सीधा तन कर बोला, कुमार हमारी लड़कियों के लिए राजमहल में रहना कोई मतलब नहीं रखता। हमारे लिये तो भले ये घास-फूंस के झोपड़े, भले ये फटे-पुराने कपड़े और भली यह नाव। धन्य है गंगामैया जो रात-दिन हमें सहारा देती है। हमारे बालकों ने नदी की खुली हवा का सेवन किया है। राजमहल में तो ये मुरझा जायँगे।"

मन्त्री से न रहा गया। वह बीच में ही बोल उठे, "भले-मानस, तू तो ऐसी बात करने जा रहा है, जैसे लक्ष्मी किसी का तिलक करने आये और वह मुँह धोने चला जाय। हस्तिनापुर का युवराज तुमसे माँग करने आया है, जरा इसका ध्यान रख और सोच-समझकर जवाब दे। तेरी लड़की हस्तिनापुर की रानी बनेगी, यह भी समझता है या नहीं?"

"मन्त्रीजी, मुझे क्षमा करो।" मछुवे ने शान्ति के साथ जवाब देते हुए कहा, "हमारे इस परिश्रमी जीवन में जो आनन्द है, वह राजकीय जीवन में खोजने पर भी नहीं मिलेगा। आज मैं, मेरी स्त्री और यह लड़की तीनों ही नाव चलाते हैं, कमाते हैं और खाते हैं। पास के प्रकाश-स्तम्भ पर जलाने के लिए दीपक रक्खा है, उसे मैं भी जलाता हूं और यह लड़की भी जलाती है। किसी समय गंगा माता क्रोधित होकर विकराल रूप

धारण करती हैं, उस समय हमारी नाव तो आकाश पाताल देखती है और हम किनारे पर खड़े हुए कांपते रहते हैं। भगवान न करे, यदि हममें से किसी को गंगा में समा जाना पड़े तो हम आह भरकर बैठे रहेंगे। लेकिन इस सुख-दुःख में हम सब साथ हैं। सब एक साथ काम करते हैं, एक साथ रहते हैं, एक साथ रोटी खाते हैं, और एक साथ ही दुःख झेलते हैं। अपने पसीने की कमाई की रोटी खाने वालों को ऐसा आनन्द किसी राजमहल में नहीं मिल सकता। कुमार मुझे क्षमा करना। हम नदी के किनारे पर बसने वालों को अच्छी तरह बात करना नहीं आता। किन्तु मेरी लड़की राजा से ब्याही जायगी, इस-लिए इसके हाथ पैरों में मेंहदी लगाई जायगी। क्या आप समझते हैं कि हमारी नाव पर डाँड चलाने से मेरी लड़की के हाथों में आज जो ललाई है, वह कहीं मेंहदी से आने वाली है?

"मैं जानता हूं कि मेरी लड़की राजमहल के हिंडोले पर झूलेगी, किन्तु मन्त्रीजी, इस गंगामैया का पानी जिस समय हिंडोले लेता है और हमारी बच्ची को अपनी छाती पर नचाता है, वह आनन्द उसे कहाँ मिलने वाला है? हम तीनों इस घास के झोंपड़े में बैठकर जिस आनन्द के साथ रूखी-सूखी रोटी खाते हैं, राजमहल के नाना प्रकार के षट्‌रस भोजनों में भी वह आनन्द उसे नहीं मिलेगा। इसलिए मन्त्रीजी, मेरे मन में यही खयाल होता रहता है कि अपनी लड़की को मुझे इस दुःख में नहीं डालना चाहिए। अपने शरीर के ढाँचे को निकम्मा बनाने में बड़प्पन मानने वाले किसी परिवार की कन्या महाराज के के लिए खोज निकालिए। मेरी यह कन्या राजमहल में कुम्हला जायगी।"

मंत्री ने यह सुनकर कुमार से कहा। "कुमार, यह तो और भी चण्ट निकला। आपने ज्यों-त्यों करके घूंट गले के नीचे उतारी तो यह मछुवा और भी चतुराई दिखाने लगा," फिर मछुवे की ओर देखकर कहने लगा, "भाई, तू तो इस तरह की बातें करता है, जैसे हमने तेरा जीवन देखा ही न हो। रातदिन डाँड चलाते-चलाते प्राण निकले जाते हैं, यह तो कहता नहीं है, और सुख आनन्द की बातें करता है। यदि तुझे लड़की देनी ही नहीं होती तो यह क्यों कहा था कि 'मेरा धेवता गद्दी पर बैठे तभी मैं उसे दे सकता हूं? आज बुद्धिमान बनकर बड़ी-बड़ी बातें बनाने बैठा है!"

"यदि मेरा वश चले तो मैं किसी भी शर्त पर महाराज को कन्या न दूं। संसार में जहां-जहाँ गरीब लोगों ने मालदार दामाद ढूंढ़े हैं, वहीं-वहीं उनके हाथ जले हैं। किन्तु मन्त्रीजी, मैं करूँ क्या, मेरी लड़की को भी महाराज से विवाह करने का मोह हो गया है ! मैंने उसे बहुत समझाया, लेकिन मेरी बात उसके गले नहीं उतरती, इसलिए लाचार हूं।" मछुवे ने गंभीर भाव से कहा।

"तब फिर कुमार की माँग स्वीकार करके कन्या का विवाह महाराज के साथ कर दे।"

"लेकिन", मछुवा रुककर बोला, "मन्त्रीजी मैंने थोड़ी दुनिया देखी है। अपने जीवन को निचोड़कर पालित-पोषित पुत्रियों को राजमहल में ढकेल देने के बाद उनकी क्या दशा होती है, यह मैंने सुन रक्खा है। जबतक वह राजा की आंखों में चढ़ी रहती है, तबतक तो रानी रहती है और आंखों से जरा उतर जाने के बाद महल के एक कोने में पड़ी-पड़ी सड़ने वाली

एक कंगाल अबला-मात्र रह जाती है। इसीलिए मेरा यह आग्रह है कि महाराज से अपनी लड़की का विवाह करूँ तो एक शर्त पर कर सकता हूं और वह यह कि उससे उत्पन्न पुत्र ही गद्दी पर बैठे।"

"इससे क्या लाभ होगा ? यदि तेरा धेवता गद्दी पर न बैठे तो अन्त में नाव चलायगा और अधिक सुखी होगा यही न ?" मन्त्री ने कहा।

मेरे हिसाब से तो यही बात है, लेकिन मेरी लड़की के विचारों के अनुसार नहीं। लड़का गद्दी का अधिकारी हो तो किसी-न-किसी दिन रानी की पूछ होना सम्भव है। विवाहित जीवन में कोई कमी रह गई हो तो राजमाता के रूप में पूरी कर लेने से उसे सन्तोष हो सकता है। मेरी कन्या के लिए आज महाराज को जो धुन लगी हुई है, वह तो अधिकतर आंखों का आकर्षण भर है। मुझे भी पिता की हैसियत से उसके भविष्य का विचार करना है।" मछुवे ने दृढ़तापूर्वक कहा।

"तो तेरी माँग यही है न कि कुमार देवव्रत के बजाय तेरा नाती गद्दी का वारिस समझा जाय ? क्या तू नहीं समझता कि ऐसा करके तू इस कुमार के साथ अन्याय करता है ?" मन्त्री ने पूछा।

"यह तो साफ है।" मछुवे ने कहा, "यदि मेरी चलती तो मैं अन्याय समझी जाने जैसी कोई माँग करता ही नहीं। आप सब महाराज के सलाहकार हैं, इसलिए आपको यह अन्याय रोकना चाहिए। मुझे तो ऐसा लगता है कि महाराज की और मेरी लड़की दोनों की अक्ल मारी गई है।"

देवव्रत ने बीच में टोकते हुए कहा, "मन्त्रीजी, ये सब बातें

छोड़िये। मेरा अपना यह आग्रह है कि महाराज इस मछुवे की कन्या से विवाह कर लें। और भाई मछुवे, तू जो शर्त लगा रहा है, वह तेरी दृष्टि से सर्वथा उचित है। महाराज आज पीड़ित हैं, उससे उन्हें मुक्त करने का मुझे केवल एक ही उपाय दिखाई देता है और वह यह कि मुझे हस्तिनापुर की गद्दी का अपना अधिकार छोड़ देना चाहिए। क्यों, यही बात है न?"

"कुमार, मैं यह नहीं कहता। आप खुशी से राजगद्दी भोगें।" मछुवे ने कहा।

देवव्रत से न रहा गया। वह बोले, "भाई, तू यह नहीं कहता, लेकिन मैं कहता हूं। मन्त्रीजी, सुनो। आर्यावर्त की इस पतित-पावनी गंगामैया के तट पर खड़े होकर मैं देवव्रत, प्रतिज्ञा करता हूं कि 'हस्तिनापुर की गद्दी पर मैं अपना कोई अधिकार न रखूंगा।' बस भाई, मछुवे! अब अपनी कन्या का विवाह महाराज से करके मुझे चिन्ता-मुक्त कर।"

मछुवे ने मुस्कराते हुए कहा, "कुमार, तुम्हारी प्रतिज्ञा तो ठीक है, किन्तु इससे मुझे सन्तोष नहीं होता।"

"तो तू कोई बड़ा गँवार जान पड़ता है।" मन्त्री ने आवेश में कहा।

मछुवा फिर हँसा और बोला, "राजपुरुषों को तो मुझ-जैसे व्यक्ति गँवार ही जान पड़ते हैं। लेकिन गँवार लोग सफेद दीवारों और सफेद कपड़ों के पीछे छिपे रहते हैं या ऐसी झोंपड़ियों और लँगोटियों के पीछे, यह बात दुनिया से छिपी नहीं है।"

"मन्त्रीजी, ऐसी बात न कहो।" कुमार ने बीच में पड़कर कहा, और मछुवे से पूछा, "भाई, तुम्हें अभी भी असन्तोष बना हुआ है?"

"जीहां", मछुवे ने जवाव दिया, "मुझे इसमें जरा भी शंका नहीं है कि ग्राप ग्रपनी प्रतिज्ञा पूरी करेंगे ग्रौर गद्दी की ग्रोर ग्राँख उठाकर भी नहीं देखेंगे। किन्तु ग्रापके पुत्रों के विषय में यह वात नहीं कही जा सकती। उन्होंने तो कोई प्रतिज्ञा की नहीं है, इसलिए गद्दी के लिए उनका लड़ना स्वाभाविक ही है। उस समय मेरा नाती निस्सहाय हो जायगा। चाहे जैसा भी हो, वह होगा तो मछुवे का नाती। सारी क्षत्रिय जाति ग्रापके पक्ष में खड़ी होगी ग्रौर ग्रापके प्रतिज्ञा-पालन करने पर भी मेरी लड़की ग्रौर नाती दोनों ही दुःखी होंगे।"

मन्त्री चकित हो उठे ग्रौर कहने लगे, "ग्रोह! यह तो कोई बड़ा भारी राजनीतिज्ञ मालूम होता है। इसे तो महाराज को विदेश-विभाग का मन्त्री नियुक्त करना चाहिए। कुमार, यह मछुवा ग्रब सीमा से बाहर की बातें करने लगा है।"

इस बीच कुमार ग्राँखें बन्द करके ग्रन्तर की गहराई में उतर गये। जीवन के छोटे-बड़े ग्रनेक प्रश्न उनके सामने ग्राकर खड़े हुए। हस्तिनापुर की गद्दी, भावी गृहस्थ-जीवन, सन्तान, काम-तृप्ति—ये सब प्रश्न एक-के-बाद एक मन में पैदा हुए ग्रौर विलीन होते गये। पिता की रक्षा के ही एक महाविचार ने इन सब विचारों को पीछे ढकेल दिया ग्रौर कुमार मानो इन सब विचारों के सागर में से डुबकी मारकर निकले हों, इस तरह सिर हिलाते हुए बोले, "भाई धीवर! मैंने विचार कर लिया है। गद्दी पर के ग्रपने ग्रधिकार को मैं कभी का छोड़ चुका हूं, किन्तु तुम्हें मेरे पुत्रों का डर वना हुग्रा है। ग्रतः मन्त्रीजी, माता गंगा, ग्रार्यावर्त के देवताग्रों ग्रौर कुरुकुल के पूर्वजो, सुनो! 'मैं देवव्रत प्रतिज्ञा करता हूं कि मैं स्वयं सन्तान उत्पन्न नहीं

करूँगा और इसके लिए विवाहित जीवन में भी प्रवेश नहीं करूँगा।' बोला भाई, अब तो तुम्हें संतोष हुआ ? या अब भी कोई डर बाकी रहा है ?"

मन्त्री और धीवर कुमार की प्रतिज्ञा सुनकर स्तब्ध रह गये। धीवर की कन्या भी आश्चर्य-चकित रह गई। सारा वातावरण गम्भीर बन गया और दूर उछलती हुई गंगामैया की लहरों के बीच से एक गम्भीर ध्वनि सुनाई दी, "यह प्रतिज्ञा अत्यन्त भीष्म है, और ऐसी प्रतिज्ञा लेने वाला भी भीष्म है।"

उसी दिन से देवव्रत भीष्म कहलाने लगे।

४ / वंश रक्षा का प्रश्न

महाराज शान्तनु ने धीवर की कन्या से विवाह कर लिया। कन्या का नाम मत्स्यगन्धा था। विवाह के बाद उसका नाम सत्यवती हो गया। सत्यवती के महाराज शान्तनु से दो पुत्र हुए। समय बीतने पर महाराज शान्तनु का स्वर्गवास हुआ और सत्यवती का पुत्र हस्तिनापुर की गद्दी पर बैठा। बड़े भाई भीष्म इन भाइयों के लिए दो राज-कन्याएँ अपहरण करके लाये और उनसे इनका विवाह किया।

किन्तु सत्यवती के दोनों पुत्र छोटी अवस्था में ही मृत्यु के ग्रास बन गये और पीछे युवती विधवाएँ छोड़ गये। रानी सत्यवती के शोक की कोई सीमा न रही। दोनों ही पुत्रों के कोई सन्तान न थी, इसलिए हस्तिनापुर की गद्दी का प्रश्न सत्यवती के सामने फिर आ खड़ा हुआ और उसे परेशान करने लगा।

पुत्रों की उत्तर-क्रिया से निवृत होने के बाद एक दिन वह बैठी थी कि भीष्म वहां आ पहुंचे और बोले, "माताजी, उदास

कैसे बैठी हैं ?"

सत्यवती जरा शरमाती हुई बोली, "ओह, भीष्म ! तुम आये ? मैं तुम्हें कभी की याद कर रही थी ।"

"कहिए क्या आज्ञा है ?" भीष्म ने पूछा ।

"मैंने जो कहा था, उसपर तुमने विचार किया ?" सत्यवती ने प्रश्न किया ।

"इसमें विचारने की कोई बात ही नहीं है ।" भीष्म ने बैठते हुए कहा, "गंगामैया के किनारे खड़े रहकर मैंने जो प्रतिज्ञा की है, उससे मैं बालभर भी पीछे नहीं हट सकता ।"

"किन्तु भीष्म ! क्या समूचे वंश का अंत होते देखकर भी अपना हठ नहीं छोड़ना चाहते हो ?" सत्यवती ने निकट आकर कहा ।

"माता, ऐसा न कहो । यह हठ नहीं है । अपने वचन पर शुद्ध बुद्धि से टिके रहने को यदि तुम हठ कहती हो, तो फिर मुझे कुछ कहना नहीं है ।" भीष्म गम्भीरतापूर्वक बोले ।

"किन्तु गंगा-सुत भीष्म ! उस दिन के संयोग ही कुछ और थे । उस समय मैं छोटी थी । गंगा के पुत्र में इतनी उदार वृत्ति और इतनी महानता होगी, मैं यह कुछ भी नहीं जानती थी और महाराज केवल मूढ़ हो रहे थे । उन सब संयोगों में मेरे पिता ने तुमसे ऐसी प्रतिज्ञा करवाई थी ।" सत्यवती ने व्याकुल होकर कहा ।

भीष्म ने तत्काल उत्तर दिया, "और वह प्रतिज्ञा थी, अतः उसका यथोचित पालन होना ही चाहिए । माता, मुझसे व्यर्थ का आग्रह न करो । इसके विपरीत, यदि मैं आज अपनी प्रतिज्ञा तोड़ने के लालच में पड़ भी जाऊँ तो आपको मुझे उससे बचाना

चाहिए। प्रतिज्ञा-भङ्ग से होनेवाला कुल का नाश अप्रकट किन्तु अधिक भयंकर होता है। इसलिए माताजी, आप कोई और उपाय सोचिए।"

"अगर तुम्हारा यही निश्चय है तो फिर एक ही उपाय बाकी रह जाता है और वह है नियोग का।" सत्यवती ने कहा।

"आपको जैसा ठीक लगे सो कीजिए।" भीष्म ने दो टूक बात कही।

"भीष्म, अब ऐसा चलता जवाब ठीक नहीं।" सत्यवती ने कहा, "मुझे ठीक लगने का प्रश्न नहीं है, हम दोनों के ठीक लगने का प्रश्न है। अब तो मुझे तुम्हारी सलाह पर चलना है। भीष्म इतने वर्षों में मैंने तुमको देख और समझ लिया है। मुझे तुम पर पूर्ण विश्वास है। इस राज्य की बागडोर अब तुम्हारे हाथ में है। बोलो गद्दी के लिए क्या करना है। गद्दी पर बिठाने के लिए और वंश-परम्परा चालू रखने के लिए पुत्र की तो आवश्यकता है ही।"

"नियोग का मतलब तो यह हैं कि कोई पर-पुरुष इन वधुओं से संतानोत्पत्ति करे। आपकी कठिनाई मैं समझता हूं किंतु नियोग वाली बात मेरी समझ में नहीं आती।" भीष्म ने विचार करते हुए कहा।

"तुम्हें इसमें क्या आपत्ति है?" सत्यवती बोली, "अपने समाज में मैं नियोग के कई उदाहरण बता सकती हूं।"

"माता, यह तो मैं भी जानता हूं कि समाज में नियोग प्रचलित है; किंतु यह प्रथा सम्मान-योग्य नहीं है। आज हमारे समाज में कई लोग हैं, जो ऐसे जंगली रिवाज को पसन्द नहीं करते।" भीष्म ने कहा।

"किन्तु भीष्म," सत्यवती बोली, " नियोग को तो शास्त्रों में भी स्वतन्त्रता दी गई है। इसके सिवा आज तो वंश की रक्षा का और कोई उपाय नहीं सूझता।"

भीष्म ने कहा, "यह मैं समझता हूं, किंतु अभी तक हमें इस चीज से उतनी घृणा न थी, जितनी आज है। यों तो एक दिन ऐसा भी था, जब कि हम आर्यों में विवाह की प्रथा ही नहीं थी और स्त्री और पुरुष स्वच्छंद विचरते थे। एक बार एक ऋषि के आश्रम में स्वयं ऋषि, उनकी पत्नी और पुत्र तीनों बैठे थे कि इतने ही में वहाँ अचानक एक दूसरे ऋषी पहुंचे और ऋषी-पत्नी का हाथ पकड़ कर चलते बने !"

"यह क्या कहते हो ! फिर क्या हुआ ?"

"सच कह रहा हूं।"भीष्म ने कहा, "होना क्या था ऋषि बोले नहीं, किंतु उनके पुत्र की आँखों में यह बात खटक गई और वह गरम हो उठा।"

"फिर ?"

"फिर," भीष्म बोले,"ऋषि ने उसे शांत किया और आर्यों में प्रचलित प्रथा की बात कही। इस पर पुत्र ने कहा, 'पिताजी, हम आर्यों में अभी तक यह प्रथा भले ही चली आई हो, किंतु अब से ऐसी प्रथा बन्द होनी चाहिए और आर्य स्त्री-पुरुषों को विवाह-बंधन में बाँधकर अपने पर अंकुश लगाना चाहिए।, तब से आर्यों में विवाह आरम्भ हुए।"

"पहले ऐसा होता था, यह किस तरह माना जाय ?" सत्यवती ने पूछा।

भीष्म ने जवाब देते हुए कहा, ऐसा ही था, और इतने पर भी वह किसी के मन को चुभता नहीं था। समय पर यही बात

चुभने लगी और ऋषि-पुत्र ने इस चुभन को स्पष्ट रूप में प्रकट किया। नियोग की इस प्रथा के संबंध में भी वही बात है। प्रचलित प्रथा है, पर कितनी दूषित है, इसका हमको अनुभव नहीं। किंतु स्त्री-पुरुष के सम्बन्ध की पवित्रता को अधिक ऊंचाई तक ले जाने के लिए प्रयत्नशील व्यक्ति इस प्रथा की निन्दा करते हैं और मुझे तो ऐसा जान पड़ता है कि कुछ ही वर्षों में यह प्रथा जड़ से जाती रहेगी।"

सत्यवती आवेश में भरकर बोली, "यह जिस दिन नष्ट होगी, उस दिन होगी। आज तो मैं महाराज शान्तनु की बेल को जीवित रखना चाहती हूं। भीष्म! तुम्हारे अपने विचार चाहे जो हों, किन्तु इस विषय में मैं तुम्हारी सहायता चाहती हूं।"

"तो कहें, आप क्या करना चाहती हैं?" भीष्म ने कहा।

"भीष्म।" सत्यवती कुछ अटकती हुई बोली, "तुम्हें अपने पेट के लड़के के समान समझकर एक रहस्य की बात कहती हूं। कहूं?"

"अवश्य कहिये।" भीष्म ने कहा।

"मेरे बारे में कोई उल्टी धारणा तो नहीं बना लोगे?" सत्यवती ने शंकित होकर पूछा।

"इतने वर्षों के अनुभव के बाद भी यदि विश्वास न होता हो तो फिर मैं क्या कह सकता हूं?" भीष्म ने उत्तर दिया।

"भीष्म, वर्षों पहले की बात है। एक बार जब मैं गंगा मैया के पानी पर नाव चला रही तब मेरा पराशर ऋषि के साथ समागम हो गया था और उनसे मेरे एक पुत्र हुआ था।" सत्यवती ने झिझकते हुए बताया।

"आज वह पुत्र कहाँ है?" भीष्म ने पूछा।

"वह आज वेदव्यास के नाम से प्रसिद्ध है।" सत्यवती ने स्पष्टीकरण करते हुए कहा।

"क्या, भगवान् वेदव्यास तुम्हारे पुत्र हैं ? अहोभाग्य तुम्हारे कि तुमने ऐसे पुत्र को जन्म दिया।" भीष्म ने श्रद्धापूर्वक कहा।

"अपने इसी पुत्र को मैं नियोग के लिए बुलाने का विचार कर रही हूं।" सत्यवती बोली।

"भगवान् व्यास को ?" भीष्म ने आश्चर्य-चकित होकर पूछा, "आप कैसी बात कहती हो, माँ ?"

"इसमें शंका की कोई बात नहीं है, भीष्म। चलते समय वह मुझसे कह गया था, इसलिए अवश्य ही आवेगा !" सत्यवती ने निश्चयपूर्वक कहा।

भीष्म सिर खुजाते हुए बोले, "मैं तो नहीं समझता कि वह आयंगे और तुम्हारी बात स्वीकार करेंगे। वर्तमान विश्व के नवीन विचारकों में वे अग्रसर हैं। ऐसी दशा में ऐसी बात वे कैसे कर सकते हैं ! फिर यह बात अलग है कि माता का आदेश हो और उन्हें यह स्वीकार करना पड़े।"

"यही बात है। बाकी तो तुम सब लोग एक-से ही हठी हो। एक बार जिस बात को पकड़ लेते हो, उसे छोड़ना जानते ही नहीं। किन्तु माता की हैसियत से मैं उससे माँग करूँगी। तुम्हारे तो प्रतिज्ञा लेने में भी मैं ही कारण थी, इसलिए आदेश देते हुए संकोच होता है। किंतु व्यास से तो मैं आग्रहपूर्वक कह सकूँगी। और मेरा मन गवाही देता है कि चाहे जितना विरोध करने पर भी अन्त में वह मेरी इच्छा को स्वीकार करेगा।"

"तब तो उन्हें अवश्य बुलाओ।" भीष्म ने कहा, "यदि यह बात निश्चित है कि हमें गद्दी के लिए पुत्र की आवश्यकता है

तो इन सब उपायों का अवलम्बन भी उतना ही निश्चित है।"

"ऐसा ही है।" "सत्यवती बोली, "जब एक बात करनी ही है तो फिर ढीले मन से क्यों की जाय ? मैं अभी व्यास को बुलाने का उपाय करती हूं और अम्बिका और अम्बालिका के कान में भी यह बात डाले देती हूं। मुझे तो तुम्हारे मत का ध्यान रखना है, ये वधुएँ क्या कहती हैं उसका भी ध्यान रखना है, और महाराज शान्तनु के वंश की रक्षा तो करनी ही है।"

"अच्छा माताजी, अब मैं जाना चाहता हूं।" यह कहकर भीष्म खड़े हो गये।

"अच्छा, जाओ। व्यास के आने के बाद आवश्यकता पड़ी तो तुम्हें बुलाऊँगी।"

यह कहकर सत्यवती उठकर पुत्र-वधुओं के कमरे की ओर चली और भीष्म अपने महल की ओर गये।

५ / युवक की दृष्टि में

विकर्ण दुर्योधन का छोटा भाई था। जिस समय द्यूत-सभा में कौरवों के अधर्म को सब कोई चुपचाप सहन कर मूक बने बैठे थे, उस समय विकर्ण ने उसके विरुद्ध आवाज उठाई थी और अपना आक्रोश प्रकट करने के लिए सभा छोड़कर चला गया था।

द्यूत-सभा के अगले दिन विकर्ण भीष्म-पितामह के महल पर गया। पितामह नित्य-कृत्यों से निबटकर अपने बगीचे में टहल रहे थे। वहीं विकर्ण पर उनकी निगाह पड़ी और उन्होंने पूछा, "कहो विकर्ण, इस समय कहाँ से आ पहुंचे ?"

"पितामह," विकर्ण ने जवाब देते हुए कहा, "घर में चैन

नहीं पड़ रहा था, इसलिए आपके पास आने को जी कर आया।"

"आज शहर में उत्तेजना कैसी है ?" भीष्म ने पूछा।

विकर्ण ने तुरन्त जवाब दिया, "उत्तेजना तो ऐसी है कि अपना सबकुछ ही उसमें भस्मीभूत हो जा सकता है, किंतु पितामह! समाज स्वभाव से ही इतना शान्त है और बड़े भाई इतने चालाक हैं कि यह उत्तजना भी समय पाकर शान्त हो जायगी। किन्तु आश्चर्य तो यह है कि आप और द्रोणाचार्य जैसों के बैठे रहते भी पाँचाली का चीर खींचा गया।"

भीष्म ने बैठते हुए कहा, "इसमें आश्चर्य की कोई बात ही नहीं। कुरुकुल का विनाश निकट आ गया है, ये सब उसी के चिन्ह हैं। तेरा बड़ा भाई अपने कुल का नाश करने के लिए ही पैदा हुआ है।"

विकर्ण ने जवाब में कहा, "पितामह, यह तो मैं भी मानता हूँ। विनाश के निकट होने पर ही इस तरह की बातें सूझती हैं। लेकिन आप यह सब मुंह पर ताला डाल कर किस तरह देखते रहते हैं ?"

"मैंने तो वहीं उसी समय आपत्ति की थी।" भीष्म ने स्पष्टीकरण करते हुए कहा।

"पितामह!" विकर्ण ने कहा, "इस तरह के शब्दों को कहीं आपत्ति करना थोड़े ही कहा जा सकता है ? यह तो अपना मतभेद कहा जा सकता है। संपूर्ण कुल में आपका पूर्व जीवन, आपका गौरवपूर्ण स्थान, आपका ज्ञान, आपकी प्रतिष्ठा और कुछ न हो तो भी आपके ये श्वेत बाल हमें आपसे कहीं अधिक आशाएँ रखने को प्रेरित करते हैं !"

"मैं तो तेरे पिता और भाई को चेतावनी देता रहता हूं;

किन्तु उनका काल निकट आ गया है, इसलिए उनके कानों को कुछ सुनाई नहीं देता।" भीष्म दुःखभरे स्वर में बोले।

"पितामह! आपका चेतावनी देना भर काफी नहीं कहा जा सकता।" विकर्ण ने उत्तर में कहा।

"तब क्या करूँ?" भीष्म ने प्रश्न किया।

विकर्ण ने अधिक निकट आकर जवाब देते हुए कहा, "पितामह! आपको यह बताने का मुझे क्या अधिकार है? माता सत्यवती ने एक बार आपको अपनी प्रतिज्ञा से डिगाने के लिए कितना प्रयत्न किया, किंतु आप हिमालय की तरह अचल बने रहे। एक बार आपके गुरु परशुराम ने अम्बा को फिर स्वीकार करके विवाह करने के लिए कितना आग्रह किया था, उस समय भी आपने अपना निश्चय न छोड़कर स्वयं गुरु के विरुद्ध हथियार उठाये और अन्त में अपनी मनचाही बात करके रहे। क्या ये दोनों बातें सच हैं?"

"हाँ, दोनों ही बातें सच हैं।" भीष्म ने जवाब दिया।

"तब फिर कौरव-वंश की कुलवधू के चीर खींचे जाने जैसी अनहोनी घटना के अवसर पर आप केवल उचित-अनुचित का शास्त्रार्थ करने बैठ गये, क्या यह ठीक था? आपने चाहा होता तो आप महाराज धृतराष्ट्र को अच्छी तरह झकझोर सकते थे। आप चाहते तो शकुनि मामा को पीटकर बाहर निकाल सकते थे, और बड़े भाईसाहब को कान पकड़कर नीचे बैठा सकते थे। इतना ही नहीं, आपने चाहा होता तो दुःशासन की क्या मजाल थी कि द्रौपदी की एक अंगुली भी तो छूता?" विकर्ण ने कहा।

"इसका अर्थ तो यही हुआ न कि मैं पूरी तरह नहीं चाहता

इसीलिए ऐसा होता रहता है ?" भीष्म ने सवाल किया।

"बहुत कुछ अंश में यही बात है।" विकर्ण ने कहा, "इस प्रकार की घटनाओं से आपके चित्त में जो चिन्ता होनी चाहिए वह होती दिखाई नहीं देती। मैं जानता हूं कि आप ऐसे प्रसंगों पर बड़े भाई को रोकते हैं। लेकिन वह पक्के आदमी हैं। वह समझते हैं कि पितामह अधिक-से-अधिक गुस्सा निकाल लेंगे। वास्तव में आपके शब्दों के पीछे उन्हें कोई शक्ति दिखाई नही देती।"

"शक्ति दिखाना न दिखाना तो दुर्योधन के हाथ की बात है।" भीष्म दीन स्वर में बोले।

"केवल ऐसी ही बात नहीं है।" विकर्ण ने कहा, "यह मैं जानता हूं कि आपके इतना कहने पर भी बड़े भाई कुछ नहीं मानते। वस्तुत: आज उनके मन में यह निश्चय है कि पितामह कुछ भी कहते रहें, आखिर हैं वह मेरे ही। आपके इस मूक सहयोग पर ही तो बड़े भाई और उनके साथी नाचते हैं, और समाज भी आपके ऐसे सहयोग के कारण भारी भ्रम में पड़ता है।"

"किंतु विकर्ण, क्या तू समझता है कि जिस तरह तू सभा से उठ कर चला गया, उस तरह मैं भी जा सकता था ?"

"अवश्य जा सकते थे।" विकर्ण ने तत्काल उत्तर दिया, "मेरे जैसे मामूली आदमी के चले जाने को तो मूर्खता कहकर उड़ाया जा सकता है, परन्तु आप तो समस्त कौरव-कुल के संरक्षक के समान हैं। आप उठकर चल दिये होते तो सारी सभा और बड़े भाई भी विचार में पड़ जाते, और कदाचित बड़े भाई स्वयं आपके पैरों में पड़ने आते। किंतु आप बैठे रहे और आपके देखते, आपको साक्षी बनाते हुए, वह चाण्डाल

चौकड़ी सारा खेल खेलती रही।"

"बेटा, तू जो कह रहा है वह ठीक है।" भीष्म ने धीमे स्वर में कहा।

"पितामह! आपको याद है, महाराज युधिष्ठिर के राजसूय यज्ञ के समय पहले पूजा किसकी की जाय, यह प्रश्न खड़ा हुआ था और आपने कहा था कि 'श्रीकृष्ण ही अपने युग के महा-पुरुष हैं, अतः प्रथम पूजा उन्हींकी होनी चाहिए' इस पर कितनी खलबली मची थी?" विकर्ण ने थोड़ा रुक कर आगे कहा, "उस समय शिशुपाल, जरासन्ध आदि कितनी उछल-कूद करने लगे थे, यह आप भूले न होंगे। किंतु आपका रोआं भी खड़ा न हुआ, शिशुपाल का सिर धड़ से अलग होकर पृथ्वी पर गिरा तब भी आपको जरा भी क्षोभ नहीं हुआ। जो पितामह के ऐसे रूप को देख चुका हो, उससे यदि कोई कहे कि कल सभा में चित्रवत् बैठे पांचाली का चीर-हरण देखते रहे, तो वह उस पर कैसे विश्वास करेगा?"

"पुत्र विकर्ण!" भीष्म धीमी आवाज में कहने लगे, "तुम्हारी बात तो हृदय के आर-पार होती जाती है और तुम जो कहते हो, वैसा करने को मन भी बहुत चाहता है, किंतु फिर भी यह विचार होता है कि मेरे बैठे रहते पापी दुर्योधन कुछ तो मर्यादा में रहेगा।

विद्रूप के स्वर में विकर्ण बोला, "पितामह! यह तो आपके मन का पछतावा मात्र है। आपके सहारे बड़े भाई यह सब कुछ कर पाते हैं। आप एक बार उनका त्याग करके तो देखें! लेकिन बड़े भाई अच्छी तरह जानते हैं कि आप उन्हें छोड़ नहीं सकेंगे, इसीलिए वह उछल कूद करते हैं!"

"त्याग करना तो चाहिए लेकिन उसके लिए मन नहीं करता। यही तो विचार ग्राता है कि किसी तरह ग्रपना वंश टिका रहा तो ग्रान्तरिक कलह ग्रपने-ग्राप मिट जायगी। इसीलिए किसी तरह निभा रहा हूं।" भीष्म ने जवाब देते हुए कहा।

प्रत्युत्तर में विकर्ण बोला, "पितामह! बड़े भाई ने ग्रापके इस मोह को ग्रच्छी तरह ताड़ लिया है। ग्राप एक वार उन्हें खुला छोड़ कर तो देखिए, फिर भले ही वह इससे हजार गुना ग्रत्याचार करें।"

भीष्म बोले, "विकर्ण! तुम ग्रपनी मेरी जितनी ग्रायु हो लेने दो, फिर बात करना। मुझसे ऐसा नहीं हो सकता। दुर्योधन मुझ-जैसे बूढ़े की कितनी चिन्ता रखता है, इसका तो तुम्हें पता है? दुर्योधन के कारोबार में मुझे जरा भी ग्रसुविधा नहीं होती, यह-सब भूलकर उसका त्याग करना भी मुझे उचित प्रतीत नहीं होता।"

विकर्ण ने कहा, "पितामह! ग्रापको ग्रौर प्रजा को ग्रच्छी तरह रखने में बड़े भाई का स्वार्थ है। ग्रपनी चालाकी से ग्राप को ग्रौर प्रजा को प्रसन्न रखकर वह सारे ग्रार्यावर्त के लोकमत को ग्रपने पक्ष में खींचना चाहते हैं। ऐसी हालत में बड़े भाई की ग्रोर से मिलनेवाली सुख-सुविधा के जाल में फंसकर ग्राप पाण्डवों के साथ ग्रन्याय कर रहे हैं, यह ग्रापको समझना चाहिए।"

"विकर्ण", भीष्म बोले, "तू मुझसे एक नौजवान की-सी जल्दबाजी करने को कहता है, यह ठीक नहीं। ग्रब तो पाण्डव वन में गये हैं। तेरह वर्ष का समय जल्दी ही बीत जायगा। उसके बाद जब पाण्डव वापस लौटेंगे तो सब एक साथ मिलकर रहेंगे।"

विकर्ण ने कहा, "आपको भले ही ऐसी आशा हो, पर मुझे तो नहीं है। एक-दो नहीं, तेरह-तेरह वर्ष तक यत्नपूर्वक मन में संचित वैर वनवास से लौटने के बाद जोर से फूट निकलेगा और हमारे सारे कुल का नाश कर डालेगा। आज यदि आप और द्रोणाचार्य हमारे पक्ष में से अलग हो जायं तो बड़े भाई की आंखें खुल सकती हैं।"

"तेरी बात मेरे गले नहीं उतरती।" भीष्म गहरे विचार से जागकर बोले, "फिर अपने प्रति दुर्योधन के सौजन्य को देखकर ऐसा करना उचित नहीं लगता।"

"पितामह, यह न समझिये कि बड़े भाई के उस सौजन्य में कुछ वास्तविकता है। यह तो आपको और गुरु द्रोण को अपने पक्ष में रखने का मूल्य मात्र है!" विकर्ण ने कहा।

"नहीं-नहीं, दुर्योधन कैसा ही हो, कम-से-कम इतना दुष्ट नहीं है। अपने वंश में इतनी गहन दुष्टता पैदा हो नहीं सकती।" भीष्म ने सिर हिलाते हुए कहा, "किंतु, विकर्ण, कल की घटना से तो मैं चौंक जरूर गया हूं, और दुर्योधन को चेता देना चाहता हूं कि फिर कभी ऐसा हुआ तो समझ रखे कि भीष्म उसका साथ नहीं देगा।"

विकर्ण ने कहा, "आप भले ही यह सब कहें, किंतु मुझे तो ऐसा लगता है कि बुढ़ापा अब आप पर हावी हो गया है। यदि ऐसा न होता तो क्या हस्तिनापुर के सारे राज्य-सिंहासन को और विवाहित जीवन के सारे सुखों को लात मार देने वाला व्यक्ति आज सामान्य सुविधाओं को लात नहीं मार सकता? किंतु बड़े भाई की चालाकी ने आपको अपने वश में कर लिया है, इसलिए भले ही विचार और वाणी में आप चाहे जितना

जोश दिखावें, लेकिन आपका निश्चय-बल इतना क्षीण हो गया है कि व्यवहाररूप में आप बड़े भाई को छोड़ नहीं सकेंगे। आप बड़े भाई का सहारा बनकर कुल को बचाने की इच्छा रखते हैं, मुझे तो यह साफ आपकी दुर्बलता मालूम होती है। हम नवयुवक तो यह सोचते हैं कि दुःशासन ने द्रौपदी का चीर खींचा और आप देखते रहे, इसलिए आप भी चीर खींचने में भागी हुए। इसी तरह बड़े भाई जो-जो अधर्म करते हैं, उन सब में आप भी भागीदार हैं। मैं तो यही समझता हूं कि आप-को इस भागीदारी में से अलग हट जाना चाहिए; लेकिन इस समय मुझे लगता है कि आप उसमें से निकल नहीं सकेंगे।"

"इस तरह निकल भागने में मैं कुल का कल्याण नहीं देखता।" भीष्म ने कहा।

"और मुझे इसी में कल्याण प्रतीत होता है।" विकर्ण दृढ़ स्वर में बोला, फिर भी आप विचार करके देखिये। आपने मेरी अपेक्षा बहुत अधिक संसार देखा है, इसलिए अपने विचार मैं अपने पास रखता हूं। यदि और अधिक अनुभव से इनमें मुझे अपनी भूल अनुभव हुई तो उसे ठीक कर लूंगा और आप-से अविनय की क्षमा मांगूंगा। लेकिन आज तो मुझे जैसा प्रतीत हुआ, आपसे कह डाला है। इसमें यदि कोई अनुचित हुआ हो तो क्षमा कीजिए।"

"नहीं, भाई, नहीं।" भीष्म ने कहा, "अनुचित की क्या बात थी। तुम-जैसे सत्यभाषी व्यक्ति इससे भी अधिक कठोर बातें कहें तभी बूढ़े के कानों में उतर सकते हैं। मैं आज की तुम्हारी बातों से प्रसन्न हूं। तुम्हारे मन में जब भी जो विचार आयें, मुझसे बराबर खुलकर कह सकते हो; संकोच करने की

जरा भी आवश्यकता नहीं।"

"पितामह ! आज तो आज्ञा चाहता हूं। फिर किसी दिन आऊँगा।" विकर्ण ने खड़े होते हुए कहा और भीष्म को विचार करते हुए छोड़कर चल दिया।

६ / दुर्योधन को सीख

हस्तिनापुर का सभा-मण्डप खचाखच भरा हुआ था। समुद्र की उत्ताल तरंगों के समान लोगों में जोश भरा हुआ था। श्रीकृष्ण के समाधानकारक शब्दों ने कौरव-सभा को घड़ी भर के लिए तो शान्त कर ही दिया। श्रीकृष्ण के शब्दों का मर्म समझनेवाले भीष्म तुरन्त ही खड़े हो गये और बोले, "बेटा दुर्योधन! आज श्रीकृष्ण जैसे महापुरुष अपने घर आकर समझौते की सलाह देते हैं, इसे मैं अपने कुरुकुल का अहोभाग्य समझता हूं। क्षत्रिय वीरो! वर्षों पूर्व राजसूय-यज्ञ के समय जो बात शिशुपाल से कही थी, वह आज आपसे भी कहना चाहता हूं। इन श्रीकृष्ण के भी हम लोगों के समान ही दो हाथ और दो पैर हैं, इसलिए इन्हें भी अपने ही समान साधारण मनुष्य नहीं समझ लेना चाहिए। श्रीकृष्ण हमारे इस समय के युगपुरुष हैं। जब-जब संसार में अंधकार छा जाता है और जनता दीन और पामर बनकर धर्म के मार्ग से विमुख हो जाती है, तब-तब हमारे बीच ऐसे युगपुरुष जन्म लेते हैं और अन्धकार को दूर करके समाज को फिर से धर्म-मार्ग पर ले जाते हैं। मुझे तो साफ दिखाई देता है कि श्रीकृष्ण का जन्म विशेषकर इसीलिए हुआ है।

"आज श्रीकृष्ण पाण्डवों की ओर से संधि का संदेश लेकर आये हैं। मैं यह जानता हूं कि श्रीकृष्ण के निमित्त से अनेक शत्रु मारे गये हैं; स्वयं उनका मामा मारा गया, यह बात प्रसिद्ध है; स्वयं यमराज को भी कुछ न समझने वाला शिशुपाल क्षण-भर में नष्ट हो गया, यह इन्हीं का प्रताप है; संसार भर के राजाओं को बन्दी बनाने वाले जरासंध को नीचा दिखानेवाले भी ये श्रीकृष्ण ही हैं। इन सब कामों में उनका एकमात्र उद्देश्य संसार में शांति स्थापित करना था; और आज भी वह इसी उद्देश्य से हमारे पास आये हैं। वह किसी भी उपाय से शान्ति चाहते हैं।

"श्रीकृष्ण ने अपनी बात हमारे सामने रक्खी, उस समय आप सबके चेहरों पर से मुझे लगा कि समझौता अवश्य हो जायगा और श्रीकृष्ण का प्रयत्न विफल नहीं होगा। इस विचार से मेरे अन्तर में शान्ति पैदा हुई। किंतु उसके बाद कर्ण और शकुनि के दुर्योधन से कानाफूसी करने और दुर्योधन के चेहरे के अनेक प्रकार के उतार-चढ़ावों से मुझे ऐसा लगता है कि कौरवों का कल्याण अभी दूर है।

"और दुर्योधन! तुझे मैं क्या कहूं? अभी तक तेरे सभी अधर्मों को देखते हुए भी सहन करता रहा हूं। फिर भी मैंने तुम्हारा साथ नहीं छोड़ा। मुझे आशा थी की तू अपनी भूल समझ लेगा और आज नहीं तो कल अवश्य सुधर जायगा। इसी आशा के बल पर ही मैं तेरे साथ चिपटा रहा हूं। किंतु आज तेरी दुष्टता का वास्तविक चित्र मेरे सामने आ गया है। दूसरे लोग जब मुझसे कहते थे, तो मैं मानता नहीं था, किंतु स्वयं श्रीकृष्ण हम सबके भले की बात कहते हैं, और उसमें भी जब तेरा

सिर हिलता है और आँखें लाल-पीली होती हैं तो तेरी दुष्टता कितनी गहरी है, यह स्पष्ट दिखाई पड़ने लगता है।

"दुर्योधन ! यह न समझना कि श्रीकृष्ण तेरी दुष्टता को समझते नहीं हैं। आज संसार में चारों ओर फैली हुई काल-सागर की लहरों की गति को श्री कृष्ण ने अच्छी तरह जान लिया है। इतने पर भी कौरव-वंश का विनाश, क्षत्रिय जाति का संहार रोकने के लिए, हम सबके कल्याण के लिए, आर्यावर्त के कल्याण के लिए और शान्ति-स्थापना के लिए वह हमारे पास आये हैं। दुर्योधन ! आज श्रीकृष्ण तुम्हारे मानव-हृदय के प्रति विश्वास पैदा हुआ है। गांधारी के सत्य और कौरव-वंश की तपस्या के प्रति श्रद्धा जाग्रत हुई है। यदि हम सबने अपने को श्रीकृष्ण की इस श्रद्धा के योग्य सिद्ध किया तो संसार में शान्ति अवश्य स्थापित होगी।

"दुर्योधन! जिस तरह तुम्हारे पिता विचित्रवीर्य के पुत्र हैं, उसी तरह पाण्डु भी विचित्रवीर्य के पुत्र हैं। तुम जितने गद्दी के अधिकारी हो बल्कि उससे भी अधिक युधिष्ठिर उसका अधिकारी है। इतने पर भी तुमने आजतक अनेक तरह छल-कपट करके पाण्डवों को गद्दी से दूर ही रखा है। क्या तुम समझते हो कि यह बात कोई नहीं जानता। तुमने पाण्डवों को मारने के अनेक प्रयत्न किये, किन्तु वे मरे नहीं; तुमने उन्हें परेशान करने में कोई कसर बाकी नहीं छोड़ी, फिर भी उन्होंने निर्भीकता के साथ सब परेशानियाँ सहीं और आज भी यदि तुमने उनकी उचित बात को स्वीकार न किया तो संसार के न्यायालय तुम्हारे विषय में क्या निर्णय देंगे, इसका भी कुछ ध्यान है ?

"तुम्हें अपने मामा शकुनि और कर्ण में बहुत अधिक विश्वास है। आज तक शकुनि तुम्हें जो रास्ता बताता रहा, उसी पर तुम चलते रहे। लेकिन शकुनि इतना नीच और पतित है, तुम्हें इसका भी कुछ पता है? और यह तुम्हारा कर्ण समय असमय बकवाद करता रहता है; किन्तु उसकी बकवास कभी तुम्हारे लिए लाभदायक हो नहीं सकेगी। दुर्योधन! राजकुमारों के पास बचपन से ही कुचक्री लोग इकट्ठे होने लगते हैं और इसलिए उन बेचारों को सच्ची बात का पता नहीं चलता और अन्त में वे विनाश के गढ़े में जा गिरते हैं। दुर्योधन! तेरा भी वही हाल हुआ है।

"दुर्योधन! तू अपने मन में यह समझता है कि पितामह और आचार्य अपनी मदद पर खड़े हैं, तब डर किसका है? लेकिन यह तेरी भूल है। विकर्ण जो बात कहता था, वह अब अधिक स्पष्टता से मेरी समझ में आ रही है। मैं अभी तक गूंगा बना हुआ सब अधर्मों में साथ देता आया हूं। लेकिन अब मैं तेरे लिए कदापि न लडूंगा। तू और तेरी चाण्डाल चौकड़ी लड़कर भले देख ले।

"दुर्योधन! अगर हमसे लड़ने का तूने आग्रह किया भी तो विजय की आशा इस युद्ध में कदापि न रखना। हम अब पुराने हो गये हैं; हमारी विद्या भी पुरानी है; हमारे शस्त्रास्त्र भी पुराने युग के हैं। हम चाहे जितने शूरवीर हों तो भी बूढ़े हो गये हैं। और तुझे तो सर्वथा नौजवान अर्जुन के मुकाबले में लड़ना है। उसका रथ वरुणदेव की अस्त्रशाला में आधुनिक रीति पर बना है। वर्तमान युग के महान् धनुर्विद्या विशारदों ने उसे मन्त्र-विद्या की दीक्षा दी है। उसके धनुष और तरकस का संसार में

और कोई जोड़ नहीं है। सबसे बढ़कर तो यह बात है कि उसके रथपर श्रीकृष्ण सारथी बनकर बैठनेवाले हैं। दुर्योधन! मैं यह सब कह रहा हूं, इसपर तेरे साथी हँस रहे हैं। लेकिन यह याद रखना कि श्रीकृष्ण जिसके सारथी हों, उसे जीतने के लिए संसार में कोई समर्थ नहीं है।

"इसलिए दुर्योधन! मेरा कहना है कि पांडवों के साथ समझौता करले और श्रीकृष्ण का आशीर्वाद प्राप्त कर। ऐसा करने पर पाण्डव तेरे मित्र बन जायंगे; उनकी मैत्री से राज्य अधिक शोभित होगा, और पाण्डव-कौरवों के एक हो जाने पर सारा संसार उनके चरणों में सिर झुकाने लगेगा। शकुनि और कर्ण! तुम मेरी सलाह स्वीकार करो और दुर्योधन को समझाओ। क्यों तुम अकारण ही सारे वंश का विनाश कराते हो?

"महाराज धृतराष्ट्र! आप इस विषय पर विचार करें। आपका यह पुत्र दुर्योधन आज समूचे कौरव-वंश का संहार करने के लिए तुला खड़ा है, आप इसे रोकें। आप आज कौरव-वंश के प्रधान हैं; आपके लिए तो कौरव और पाण्डव एक समान होने चाहिए। पाण्डु के वन में मर जाने के बाद आप ही पाण्डवों के पिता बने थे, इतने पर भी पाण्डवों के साथ अन्याय किये जाने में आपने अपना सहयोग दिया, इससे आप इन्कार नहीं कर सकते। किन्तु महाराज! पाण्डव इन सब बातों को भुला देने की क्षमता रखते हैं। आज आप अपना बड़प्पन सिद्ध करें और पाण्डवों के साथ न्याय करें। अभी सन्धि करने का समय है। आज यदि सच बात न मानी और लड़ाई हुई तो आपने आजतक जिन-जिन कलि-कृत्यों को उत्तेजन दिया है उन सबका फल जब आपको भुगतना पड़ेगा, तब बहुत कठिन प्रतीत होगा और

उस समय इस बूढ़े के वचन आपको याद आवेंगे।

"धृतराष्ट्र! आज आप दुर्योधन से सर्वथा स्पष्ट रूप से कह दें, और यदि वह न माने तो आज ही उसका त्याग कर दें। जन्म के समय से ही उसका त्याग कर दिया होता तो आज यह अवसर न आता। लेकिन अभी तो त्याग किया जा सकता है। धृतराष्ट्र! आप जानते हैं कि महाराज शान्तनु और माता सत्यवती को अपनी वंश-बेलि को हरी-भरी रखने की कितनी ममता थी? क्या आप नहीं समझते कि आप उसी कौरव-वंश को विनाश के पथ पर ले जा रहे हैं ?

"दुर्योधन ! पाण्डवों को उनकी मांग के अनुसार उनका भाग दे दे, और युद्ध के रक्तपात से अपने वंश को ही नहीं, सारे मानव-समाज की रक्षा कर। दुर्योधन ! गांधारी-पुत्र! मेरी बात मानकर पाण्डवों के साथ सन्धि करके और तुम एक सौ और वे पाँच मिलकर समस्त संसार को शांति का पाठ पढ़ाओ।"

७ / सेनापति के पद पर

"पितामह ! आपने सब आशाओं को धूल में मिला दिया है। आपके और द्रोणाचार्य के बल पर ही तो मैंने यह युद्ध छेड़ा है।" दुर्योधन ने निराश होते हुए कहा।

"पर मैंने तो श्रीकृष्ण के आने पर जो सभा हुई थी उसी में साफ सुनाकर कह दिया था। तू स्याह सफेद करके लड़ाइयाँ मोल लेता फिरे और मुझे उनमें तेरी ओर से लड़ना पड़े यह कोई न्याय है? ऐसे अधर्म-युद्ध में अब भाग लेने वाला

नहीं ।" भीष्म आवेश में भरकर बोले ।

"पितामह ! आज अब मैं समझ रहा हूं। शकुनि और कर्ण वर्षों से मुझसे कहते आ रहे थे कि पितामह ऊपर-ऊपर से तो तेरे दिखाई देते हैं, किन्तु अन्दर से वे पाण्डवों के साथ हैं, और ठीक समय पर तुझे धोखा देने वाले हैं। अभी तक मैं उनकी बात नहीं मान रहा था, लेकिन आज मेरी आँखें खुली हैं। अब मैं समझ रहा हूं कि आज तक भी मैंने जो आपका पोषण किया वह केवल पाण्डवों का हित करने के लिए ही था।" दुर्योधन ने निश्वास छोड़ते हुए कहा ।

"दुर्योधन! ऐसा न कह।" भीष्म बोले, "आज तक तो मैंने पाण्डवों का हित कभी किया नहीं। जब-तब मैं तेरे लिए ही लड़ा हूं और अनेक अवसरों पर तूने पाण्डवों को परेशान किया तब भी मैंने तेरा पक्ष नहीं छोड़ा ।"

"यह आपकी मुझ पर कृपा हुई। किन्तु आज आन-बान के मौके पर आप पाण्डवों के पक्ष में जा रहे हैं, इसलिए मुझे ऐसा लगा।" दुर्योधन ने कहा ।

"मैं उनके पक्ष में भी जानेवाला नहीं हूं। मैं तो जीवन के किनारे पर खड़ा-खड़ा तुम्हारा युद्ध देखूंगा और जब ईश्वर मृत्यु को भेजेंगे तब उसका स्वागत करूँगा। मन में तो यह आता है कि कुल का विनाश देखने के लिए जीने की अपेक्षा आत्म-घात करके मर जाऊँ तो अच्छा, किन्तु यह पाप करने के लिए हृदय साथ नहीं देता। आजतक मैंने सारे परिवार के प्रति ममता बढ़ाई इसलिए ईश्वर से चाहता हूं कि मुझे उसका विनाश न दिखाये ! तू जा, और यह निश्चय रख कि मैं पाण्डवों की ओर नहीं जाऊँगा।" भीष्म बोले।

"नहीं-नहीं, इसकी अपेक्षा तो यह अच्छा है कि आप पाण्डवों की ओर से युद्ध करें, जिससे दुनिया भी देख ले।" दुर्योधन बोला।

"दुर्योधन ! यदि मैं पाण्डवों की ओर से लड़ा तो तेरा एक भी योद्धा जीवित न रह पायगा।" भीष्म ने कुछ आवेश से कहा।

दुर्योधन ने भीष्म की बात पकड़ ली और बोला, "योद्धा की बात जाने दीजिए, मैं तो समझता हूं कि एक भी कौरव जीवित न रहेगा। किन्तु पितामह! आपके हाथों मौत कहाँ मिलनेवाली है। आपके हाथों युद्ध-क्षेत्र में सोने को मिले तब तो जीवन सफल हो जाय। ऐसा सद्भाग्य कहाँ से आये? किन्तु पितामह ! अब तो युद्ध तक पहुंचने की ही कुछ आवश्यकता नहीं। यह रही मेरी तलवार। अपने ही पवित्र हाथों से यह तलवार मेरी गरदन पर चलाइये, जिससे कि सब काम पूरा हो जाय। इसके बाद आप प्रसन्नतापूर्वक पाण्डवों के साथ समझौता कर लें। समझौते के मार्ग में अकेला मैं ही तो बाधक हूं, उसे आप दूर कर दीजिये। इससे अपना वंश भी बच जायगा और क्षत्रियों का संहार भी रुक जायगा। यह तलवार लीजिये और मुझे मारकर मेरे ही रक्त से आप महाराज युधिष्ठिर का राजतिलक कर सकते हैं और उनके सिरपर मुकुट धारण करा सकते हैं।"

"चिरंजीव ! मैं और अपने हाथों से इस प्रकार तेरी अकाल मृत्यु का साधन बनूं !" सजल नेत्रों से भीष्म ने कहा।

"इसमें अकाल मृत्यु कहाँ हुई? आपने स्वयं ही तो सभा में कहा था कि मेरा काल मुझे बुला रहा है। मेरे जाने के बाद आप कहेंगे कि पाण्डव मेरे भाइयों को जीवित मार डालें अथवा

वन में हाँक दें। पांचाली के बाल पकड़े जाते आपने देखा है, इसलिए उसके प्रायश्चित्त स्वरूप युधिष्ठिर को भानुमति की चोटी पकड़ कर खींचने की सलाह दें, तो मेरे जी को शान्ति मिलेगी।" दुर्योधन बोला।

दुर्योधन के इन व्यंग्य-बाणों से भीष्म घबरा गये और कहने लगे, "बेटा दुर्योधन! ऐसी बातें कहकर व्यर्थ ही मुझे क्यों दुखी करता है?"

"इसीलिए तो आपको दुःखी करने वाला इस संसार से विदा होने की अनुमति चाहता है और आपको सुखी करनेवाले युधिष्ठिर के लिए जगह खाली करना चाहता है।" दुर्योधन ने कहा।

"दुर्योधन! इस तरह के वाक्-बाण चलाकर मुझ बूढ़े के हृदय में घाव क्यों कर रहा है? जरा तो सोच।" भीष्म ने और भी दुःखित हृदय से अपनी बात कही।

दुर्योधन आँसू टपकाता हुआ बोला, "पितामह! विचार क्या करूं? सच बात तो यह है कि इस युद्ध में आपके लड़े बिना काम चल नहीं सकता। सौ बात की एक बात यह है कि आपको पसन्द हो तो और न हो तो भी आपको लड़ना है। आप ही के विश्वास पर तो यह ग्यारह अक्षौहिणी सेना तैयार हुई है। क्या यह सेना मुझे देखकर आई है? ये लोग तो कौरव-कुल के वृद्ध पितामह के सफेद बाल देखकर आये हैं, और आपके साथ वे जानते हैं धनुर्धर द्रोण को! कुछ भी हो आपको लड़ना ही पड़ेगा।"

"मेरी इच्छा के बिना मुझसे लड़ा कैसे जायगा? मुझे तो इसमें स्पष्ट रूप से तेरा अधर्म प्रतीत होता है।" भीष्म बोले।

"इस धर्माधर्म का निर्णय तो युद्ध समाप्त होने के बाद हम दोनों मिलकर कर लेंगे। आज तो धनुष हाथ में लेकर टंकार कीजिये, जिससे शत्रुओं के हृदय दहल उठें।" दुर्योधन ने जरा मुस्कराते हुए कहा

"दुर्योधन! मैंने पहले ही तुझसे कहा था कि यह युद्ध मोल लेना ठीक नहीं। किन्तु तू माना नहीं।" भीष्म ने फिर कहा।

"पितामह! मैं जानता हूं कि उस सभा में मैंने आपका कहना नहीं माना, इससे आपको रोष हुआ है और उस रोष के कारण ही आप युद्ध से अलग रहना चाहते हैं।" दुर्योधन ने जरा आवेश में आकर कहा, "किन्तु पितामह! इस तरह आप और मैं किस तरह अलग हो सकते हैं? चाहे जैसा भी हूं, हूं तो आपका ही बालक। मैं शरारत करूं, आपकी मूंछ पकड़ कर खींचूं, जो मनमें आवे, कहूं, आपको सब सहन करना ही होगा। आपका आदेश न मानूं तो आप मेरे चपत लगाकर मुझे नीचे बैठा सकते हैं; लेकिन आप मेरा त्याग नहीं कर सकते। छोड़ेंगे तो लोग भी यहीं कहेंगे कि दुर्योधन को तो अकल नहीं थी, लेकिन पितामह को क्या हुआ था? इसलिए आप तैयार हों और सारी कौरव-सेना का नेतृत्व हाथ में लें।"

"दुर्योधन! मैं बूढ़ा आदमी, इतनी बड़ी सेना को किस तरह संभाल सकूंगा?" भीष्म ने जवाब दिया।

"पितामह! यह सोचने का काम आप मुझपर छोड़ दें।" दुर्योधन ने कहा, "इतने वर्षों तक मैं गद्दी पर बैठ चुका हूं, इस-लिए किसको बूढ़ा और किसे जवान समझा जाय, कम-से-कम इतना तो मैं सीख गया हूं। आप तो केवल मुझे अपनी स्वीकृति दीजिये।"

"दुर्योधन ! मन तो अभी भी यही कहता है कि मुझे इस युद्ध में भाग नहीं लेना चाहिए ।" भीष्म ने धीमे स्वर में कहा ।

"आपका मन आज जरा कुछ ऐसा ही हो गया है। मैं अब आपसे आज्ञा लेता हूं । अपने को आज शाम को कूच करना है । मैं गुरु द्रोणाचार्य के पास जाकर उन्हें भी आपका नाम लेकर तैयार करता हूं ।" यह कहता हुआ दुर्योधन उठने लगा ।

"इसमें मेरा नाम लेने का क्या सवाल है ? राजा तो तू है । दुर्योधन ! अन्त में मैं तुझसे हारा !" भीष्म ने कहा ।

"दादा पोते से हारे तो क्या इसमें दादा की शोभा नहीं है ?" दुर्योधन ने हंसते हुए कहा ।

८ / युधिष्ठिर को आशीर्वाद

कुरुक्षेत्र के मैदान पर सेनाएँ एकत्र थीं । पाण्डवों और कौरवों के पड़ावों में मनुष्य, हाथी, घोड़े, रथ और गाड़ियों आदि का जमघट लगा हुआ था । भारतवर्ष के राजा-महाराजा, मानो प्रात: होते ही जीवन सार्थक होनेवाला हो, इस प्रकार सूर्योदय की प्रतीक्षा कर रहे थे ।

इतने में ही सन्ध्या-काल आया । भगवान भास्कर दोनों छावनियों के मैदान पर एक लम्बी नजर डालते हुए दूसरी दुनिया की ओर सिधार गये । सारी कौरव-सेना युद्ध के लिए उतावली हो रही थी । कौरव-सेना के ठीक मध्य में भीष्म पितामह का आलीशान तम्बू खड़ा किया गया था । तम्बू के बीच के कमरे में आठ नौ बजे के लगभग पितामह पैर फैलाकर लेटे हुए थे । उसी समय एक नौकर ने आकर कहा, "पितामह ! महाराज

युधिष्ठिर आये हैं और बाहर खड़े हैं। वे आपसे मिलने की आज्ञा चाहते हैं।"

भीष्म खड़े हो गये और बोले, "युधिष्ठिर को भी मिलने की आज्ञा मांगने की आवश्यकता है?"

"इतनी रात गये आने का क्या कारण हो सकता है?" पितामह इसी सोचविचार में पड़े थे कि इतने में युधिष्ठिर ने पहुंच कर उनके चरणों में सिर नवाया।

"युधिष्ठिर यह क्या करता है।" भीष्म ने युधिष्ठिर की ओर झुकते हुए कहा।

"पितामह के चरणों में बालक युधिष्ठिर सिर झुकाता है।" युधिष्ठिर ने नम्रतापूर्वक उत्तर दिया।

भीष्म ने युधिष्ठिर का मस्तक चूमा और बोले, "उठ बेटा युधिष्ठिर इतनी रात गये कैसे आये?"

"पितामह! प्रात:काल से युद्ध प्रारम्भ होने वाला है, अत: आपको अभिवादन करने और आपका आशीर्वाद लेने आया हूं।" एक ओर बैठते हुए युधिष्ठिर ने जवाब दिया।

"मेरा आशीर्वाद?" भीष्म ने जरा शरीर को स्वस्थ करते हुए कहा, "भीष्म के आशीर्वाद तो आजकल निस्तेज हो गये हैं। वैसे भी तुझे तो ईश्वर का आशीर्वाद है ही। फिर भी तू आया यह अच्छा ही किया। सच्ची बात तो यह है कि यदि तू न आता तो मुझे बुरा लगता।"

युधिष्ठिर ने जवाब दिया, "मेरे मन में हुआ कि कल का किसे पता है; कौन जाने इस प्राणघाती युद्ध में मैं समाप्त हो जाऊँ, अत: उससे पहले ही पितामह को प्रणाम कर आना अच्छा है। यहाँ से मैं गुरु द्रोण के पास जाने वाला हूं। प्रात:

काल से तो आप संहार-कार्य में लग जायेंगे, उस दशा में कौन बाकी बचने वाला है।"

"युधिष्ठिर ! ऐसा न कह।" भीष्म व्यथित स्वर में बोले।

"यह न कहूं तो क्या कहूं ? इतने वर्ष जंगलों में भटककर विताये; अब कल पाँचों भाई कुरुक्षेत्र के मैदान में धराशायी हो जायंगे।" युधिष्ठिर ने कहा।

"बेटा ! इतना दीन क्यों होता है ?" भीष्म बोले।

"भीष्म के सामने तो संसार-भर का क्षात्र-तेज क्षीण हो जाता है, उसमें मेरी तो बिसात ही क्या है ? हम पांचों भाई तो अपने सिर आपको सौंपकर मैदान में सोने के लिए आये हैं।" युधिष्ठिर ने कहा।

"युधिष्ठिर यह तेरी भूल है।" भीष्म पितामह बोले, "यदि कोई मनुष्य यह मानता हो कि युद्ध के अन्त में दुर्योधन विजयी होगा तो वह भूल करता है। युद्ध के अन्त में विजय तो युधिष्ठिर तेरी ही है।"

"पितामह मुझे बालक समझकर बहका तो नहीं रहे हैं ?"

"युधिष्ठिर आज मैं तुझे बहका सकता हूं, किन्तु विश्व की नियामक सत्ता को तो नहीं बहका सकता। आज दुर्योधन मेरे और द्रोण के बल पर कितना ही कूदता हो, किन्तु उसे पता नहीं है कि अर्जुन के सपाटे में हमारी कोई गिनती न होगी।" भीष्म ने जोर देकर कहा।

"पितामह आप ऐसी बात कहते हैं, वह मानी कैसे जा सकती है ?" हाथ जोड़ते हुए युधिष्ठिर बोले।

"कैसे मानी जा सकती है ? तो क्या मैं झूठ बोलता हूं ?" भीष्म ने मानो आवेश के स्वर में कहा, "अर्जुन का रथ कौन हांकने वाला है, इसका भी कुछ ध्यान है ? यह तो अर्जुन का

रथ है; वैसे किसी साधारण व्यक्ति का रथ होने पर भी यदि उसके घोड़े की बागडोर श्रीकृष्ण के हाथ में हो तो इस संसार में उसे पराजित करने वाला मुझे तो कोई दिखाई नहीं देता। मैं कितना ही बलवान होऊँ और द्रोण भी कितने ही शक्तिशाली हों, किन्तु यह सारा बल एक क्षण में क्षीण हो जानेवाला है, जब कि अर्जुन का बल युद्ध के अन्त तक बना रहनेवाला है। युधिष्ठिर! तुझसे क्या कहूं? मैं तो इस युद्ध में आना ही नहीं चाहता था; किन्तु दुर्योधन बहुत पीछे पड़ा, इसलिए आना पड़ा है।"

"इसीलिए तो मुझे भय है।" युधिष्ठिर ने जवाब देते हुए कहा, "आप मन में निश्चय कर लें तो आप अकेले ही आधे दिन में हम सबको समाप्त कर देने में समर्थ हैं।"

"कोई दिन ऐसा रहा होगा, किन्तु आज वह बात नहीं है।" भीष्म बोले, "आज तो धनुष-बाण हाथ में लेने का अवसर आने पर भी यह विचार बराबर मन में बना रहता है कि मैं अधर्म के पक्ष में हूं। इसलिए शक्ति-भर बल लगाने पर भी धनुष की प्रत्यंचा ढीली ही रहेगी। युधिष्ठिर! चिन्ता की जरा भी आवश्यकता नहीं है। विजय तुम लोगों की ही है।"

युधिष्ठिर बोले, "पितामह! अर्जुन तो आज सुबह से ही ढीला पड़ गया है। आपके और आचार्य द्रोण के मुकाबले में कैसे लड़ा जा सकेगा, इसकी कल्पना ने ही उसे मूढ़ बना दिया है।"

भीष्म ने कहा, "युधिष्ठिर! अपने अर्जुन से कहना कि मुझपर बाण चलाने में जरा भी संकोच न करे। युधिष्ठिर! तू समझदार है, इसलिए तुझसे कहता हूं। और द्रोण आज खोखले हो गये हैं। समय की गति को देखकर मुझे प्रतीत होता है कि हमारे अब संसार से विदा होने का समय आ पहुंचा और अर्जुन नये तेज का वाहक है, अतः उसके हाथ से मेरी मृत्यु हो

तो इसे मैं अपना अहोभाग्य समझूंगा।"

युधिष्ठिर ने कहा, "आप यह क्या कहते हैं? आपका एक ही बाण हम सबको छेद डालने में समर्थ है।"

भीष्म बोले, "युधिष्ठिर ऐसा न समझो। हमारे दिन अब अस्त की ओर हैं। मैं तो कभी का जान गया हूं कि इस युद्ध में हमारी मृत्यु है। तू जरा भी चिन्ता न कर। श्रीकृष्ण और अर्जुन संसार में नया प्रकाश और नया युग लाने वाले हैं। उनके मुकाबले में हम कोई भी टिकने वाले नहीं हैं, इसका तू निश्चय रख। अच्छा, अब तू जा, तुझे कल की व्यवस्था करनी होगी। हाँ, एक बात का ध्यान रखना। सबकुछ श्रीकृष्ण और अर्जुन को सौंप देना। इनके हाथों हम सबकी पराजय है और इनके हाथों ही नवीन युग का जन्म होगा। जा, चिरंजीव, जा। ईश्वर तेरा कल्याण करे।"

भीष्म के इतना कहने पर युधिष्ठिर ने फिर उनके चरणों में सिर रखा और विदा ली।

६ / कुरुक्षेत्र का दसवाँ दिन

युद्ध को आरम्भ हुए आज दसवाँ दिन था। पिछले नौ दिनों में कितने ही वीर बालकों को पितृ-विहीन करके चलते बने। पिछली नौ रातों में कितनी ही अबलाओं ने अपने निरे आँसुओं से पृथ्वी को भिगो दिया। इन नौ दिनों के बीच मानवों के आर्त्त-नाद से पृथ्वी और आकाश में कितनी ही दरारें पड़ीं और आर्यावर्त्त का आधा क्षत्रिय समाज लगभग समाप्त हो गया।

और इन नौ दिनों के घोर युद्ध के बाद भी जय-पराजय

का पलड़ा किसी भी ओर झुकने का नाम नहीं लेता था। दुर्यो-धन अथवा युधिष्ठिर इसका निर्णय अभी अधर में ही लटका हुआ था। दोनों ओर ऐसी रस्साकशी हो रही थी कि निश्चित कुछ भी नहीं कहा जा सकता था।

दसवें दिन का प्रभात क्या सन्देश लेकर आया है ?

दुर्योधन घबरा उठा। उसने हिसाब लगा रक्खा था कि भीष्म पितामह संकल्प करें तो आधे दिन में ही सारी पाण्डव-सेना का संहार कर डालेंगे। वही पितामह आरम्भ से ही मन लगाकर लड़ नहीं रहे हैं, यह शंका उसे हो गई थी। उन्होंने पांडव सेना पें महानाश का दृश्य खड़ा कर दिया और श्रीकृष्ण जैसों को प्रतिज्ञा के विरुद्ध हाथ में चक्र लेने के लिये विवश कर दिया। इतने पर भी दुर्योधन की शंका दूर नहीं हुई और इसलिए "पितामह मेरे पक्ष में रहते हुए भी पांडवों के हित का ध्यान रखते हैं", इस प्रकार के मर्मभेदी वाक्य कहकर उसने भीष्म के हृदय में घाव किये, और आज इस प्रकार के घावों से आहत भीष्म फिर से कौरव-सेना के मोरचे पर आकर खड़े हो गये।

भीष्म तो गंगामाता के पुत्र। गंगामैया की गोद में खेलते-खेलते उन्होंने धनुर्विद्या सीखी; परषुराम जैसे गुरु से उन्होंने दीक्षा प्राप्त की। घर-गृहस्थी के झंझटों से मुक्त रहने के कारण छोटी-छोटी बातों में उन्होंने अपनी शक्ति बरबाद नहीं कर डाली थी; कौरव वंश को बनाये रखने के मनोरथ से बुढ़ापे की अवस्था में भी आज उन्होंने शस्त्र धारण किया था; सारी पाँडव-सेना में अकेले एक अर्जुन को छोड़कर दूसरा एक भी ऐसा योद्धा मिलना कठिन था, जो उनके मुकाबले में टिक सकता। इन्हीं भीष्म ने सेना के आगे आकर ललकारते हुए कहा, "अर्जुन! आ आ सामने और संभाल ले अपना धनुष-बाण!"

भीष्म की ललकार सुनते ही कुन्ती-सुत अर्जु न उछल पड़ा। वर्षा-काल के बादलों की गर्जना सुनते ही बांसों उछाल मारने वाले सिंह-शावक के समान अर्जु न का हृदय उछलने लगा और उसके हाथ एकदम गाण्डीव पर जा पहुंचे। उसका सारा शरीर उतावला हो गया। उसकी आँखें अकेले भीष्म को ही ढूंढ़ने लगीं और वह बोल उठा, "सखा श्रीकृष्ण! भीष्म कहां हैं? मेरा रथ उन्हीं के पास ले चलो।"

रथ के घोड़ों की लगाम सम्भालते हुए श्रीकृष्ण ने कहा, "अर्जु न! देखा पितामह को? आज के भीष्म कुछ और ही दिखाई देते हैं। नित्यप्रति तो पहले सामने आते थे, फिर तेरे बाणों के चरण छूने पर उन्हें सिर पर रख तुझे आशीर्वाद देते थे और फिर युद्ध आरम्भ होता था; किन्तु आज उन्होंने इन विधि-विधानों को छोड़कर युद्ध के लिए सीधा आह्वान ही किया, इस लिए आज का रंग-ढंग कुछ और ही प्रतीत होता है।"

श्रीकृष्ण रथ को आगे बढ़ाते हुए यह कह ही रहे थे कि इतने में पाण्डव-सेना के योद्धा, हाथी, रथ, घोड़े और सारथि सब धड़ाधड़ धराशायी होने लगे। भीष्म के प्रखर ताप में किसी जंगल में लगे भारी दावानल से जलकर नष्ट होते हुए वृक्षों के सामान पाण्डव-योद्धा नष्ट होने लगे। इससे युधिष्ठिर को यह प्रतीत होने लगा कि यदि संहार-कार्य इसी तरह चलता रहा तो शाम होते-होते पाण्डवों का अस्तित्व मिट जायगा।

इतने में भीष्म ने फिर ललकारा, "अर्जु न! इस ओर, इस ओर। मुझपर चारों ओर से बाणों की वर्षा हो रही है, किन्तु तेरे बाणों में बिधने का आनन्द मुझे नहीं मिल रहा है।"

इसी बीच श्रीकृष्ण ने अर्जु न का रथ ठीक भीष्म के सामने ले जाकर खड़ा कर दिया और अर्जु न ने गाण्डीव की टंकार कर

बाण छोड़ना शुरू कर दिया। इसके जवाब में भीष्म न प्रलयकाल के सूर्य के समान इस तेजी के साथ अर्जुन पर बाणों की झड़ी लगाई कि अर्जुन इस सोच में पड़ गया कि ये भीष्म हैं अथवा साक्षात् काल, और गांडीव से ऐसे तीक्ष्ण बाण छोड़ने शुरू किये कि भीष्म का सारा शरीर छलनी होने लगा।

इतने पर भी अर्जुन का हाथ ढीला पड़ता देखकर श्रीकृष्ण स न रहा गया और कहने लगे, अर्जुन, ऐसे ढीले-ढाले हाथों से हस्तिनापुर का शासन किस तरह चलेगा ? तेरे इन पितामह ने दो बार तो मेरी प्रतिज्ञा तुड़वाई और मुझे सुदर्शन चक्र सम्भालना पड़ा। आज सावधान हो जाओ, नहीं तो यह सारी सेना मारी जायगी।"

अर्जुन ने उत्तर देते हुए कहा, श्रीकृष्ण ! प्रयत्न तो बहुत करता हूं, किन्तु पता नहीं क्यों, पितामह को देखते ही हाथ ढीला पड़ जाता है !"

श्रीकृष्ण दृढ़ता से बोले, "अर्जुन ! इस तरह काम नहीं चलने का। यह शिखण्डी जो मौजूद है। एक ओर यह अपना रथ लाकर भीष्म पर बाण चलावे और दूसरी ओर से तू चला और दोनों मिलकर भीष्म को यह अच्छी तरह से दिखादो कि पाण्डव भी लड़ना जानते हैं।"

अर्जुन और शिखण्डी दोनों ने मिलकर भीष्म पर बाणों की वर्षा शुरू की। इससे भीष्म घबरा गये और कहने लगे, अर्जुन यह अच्छी तरह समझ रख कि कौन सा बाण शिखण्डी के धनुष पर चढ़ कर आता है, और कौन-सा अर्जुन के गाण्डीव में से निकल कर आता है, यह मैं खूब पहचान सकता हूं। अर्जुन! जरा सोच तो सही कि यह बिचारा शिखण्डी क्या देखकर मुझपर बाण चलाता होगा ! गाड़ी के नीचे चलनेवाला कुत्ता

अपने मन में यही समझता है कि गाड़ी मैं चला रहा हूं। लेकिन यह तो शिखण्डी है, आज यह पुरुष है, लेकिन किसी समय यह स्त्री था। उसके मुकाबले में प्रहार न करने का मेरा संकल्प है; किन्तु अर्जुन, इसके पीछे से तेरे जो बाण छूटते हैं, वे मुझे छेदते है, उनकी मिठास मैं अनुभव करता हूं। अतः तू संकोच न कर और अपने बाण चलाये जा। आज मेरा अन्तिम दिन है। मेरी आत्मा इस चोले को छोड़ने के लिए तड़फड़ा रही है।"

यह कहते-कहते भीष्म हाथ से शस्त्र छोड़कर बैठ गये और अर्जुन के बाणों की मार सहने लगे। अर्जुन ने बौछार जारी रक्खी। सूर्यास्त होने तक भीष्म का सारा शरीर छलनी हो गया और वह रथ से नीचे आ गिरे।

भीष्म के धराशायी होने का समाचार दोनों सेनाओं में बिजली की तरह फैल गया और युद्ध अपने आप बन्द हो गया। अर्जुन, श्रीकृष्ण, युधिष्ठिर, द्रोण, दुर्योधन, भीम तथा कृपाचार्य आदि सब उन्हें घेरकर खड़े हो गये। अर्जुन खिन्न चित्त से एक ओर खड़ा था। अतः भीष्म ने अपना सिर उठाकर उसकी ओर देखते हुए कहा, "बेटा अर्जुन! खिन्न होने की आवश्यकता नहीं है। नवयुवकों के हाथ मृत्यु पाने का सौभाग्य बहुत कम बूढ़ों को मिल पाता है। मेरा जीवन आज सफल हो गया है।"

"पितामह! जिनकी गोद में मैं बड़ा हुआ हूं, उन्हीं को आज मैंने अपने हाथों से मारा!" अर्जुन दीन स्वर में बोला।

"बेटा अर्जुन! तू भूलता है," भीष्म ने शान्ति के साथ जवाब देते हुए कहा, "हम बूढ़े लोग गोद खिलाने के बहाने सदा ही नौजवानों के मार्ग में आड़े आते रहें तो हमें धक्के देकर आगे बढ़ने का तुम नौजवानों को पूरा अधिकार है। आज

तेरे जैसे नौजवान को मेरे प्रति दया दिखाने के बजाय मुझे मार-कर समाजरूपी खेत में मेरे शरीर का खाद बनाकर डाल देना चाहिए। कल तू बूढ़ा होगा तब नौजवान पीढ़ी नव-संस्कृति की खेती में तेरा भी खाद के रूप में उपयोग करेगी। मानव-समाज के कल्याण का यही मार्ग है। मेरे जैसे बूढ़े अन्तिम घड़ी तक दूर न खिसकें तो अन्त में उन्हें दूर करके ही छुटकारा मिल सकता है।"

"किन्तु पितामह! आप तो हमारे वंश के स्तम्भ हैं।" अर्जुन आंसू टपकाते हुए बोला।

"इसीलिए तो, जब स्तम्भ गलकर सड़ जाता है तो उसे बदल कर वहां नया स्तम्भ लगा देना चाहिए।" भीष्म ने कहा, "अर्जुन! आज मैं तेरे जैसे नवयुवक के प्रहार प्रसन्नतापूर्वक सहकर धराशायी हुआ हूं। इसलिए मुझ-जैसा कोई भाग्यवान नहीं है, अब मेरी पीड़ा बढ़ रही है। तुम जरा हट जाओ। दुर्योधन कहाँ है?"

"पितामह! यह रहा।" कहता हुआ दुर्योधन सामने आया और बोला, "पितामह! आपको छावनी में ले चलकर सारे बाण निकलवाने की व्यवस्था करता हूं।"

"दुर्योधन! ये सब व्यर्थ की बात है। अब भीष्म की आशा छोड़ दे। मैं आज नहीं मरने वाला हूं, प्रत्युत जब तक सूर्य की दिशा बदल नहीं जाती, इसी बाण-शैया पर ही रहूंगा।" भीष्म ने कहा।

"बाण-शैया पर!" दुर्योधन ने आश्चर्य-चकित होकर पूछा।

"हाँ, बाण-शैया पर।" भीष्म ने कहा, "कुरुक्षेत्र के एक कोने में पड़ा-पड़ा मैं सारे कुल का विनाश अपनी आँखों देखता रहूंगा, तभी मेरे मोह का प्रायश्चित होगा।"

"किन्तु इन बाणों की पीड़ा कितनी असह्य होगी ?" दुर्योधन बोला।

भीष्म ने आंखें ऊँची करके दुर्योधन की ओर ताकते हुए कहा, "मनुष्य तो अपने जन्म के समय से ही बाण-शैया पर सोता आया है। क्या तू समझता है कि अभी तक जीवन में भोगी हुई बाण-शैया की अपेक्षा यह बाण-शैया अधिक कष्टकर है? यदि ऐसा है तो तेरी भूल है। यदि मनुष्य नित्यप्रति हृदय में चुभोये जाने वाले बाणों का हिसाब लगाये तो ये बाण तो उसके मुकाबले में किसी गिनती में नहीं हैं। किन्तु बेचारा मनुष्य भूल जाता है। इसलिए सारे दुःख उसे याद नहीं रहते और जरा सुख मिलते ही फिर से आशा करके जीने लगता है। दुर्योधन! युधिष्ठिर कहाँ है ?"

"यह रहा, पितामह !" युधिष्ठिर ने जवाब दिया।

"तुम लड़ चुको तो उसके बाद मेरे पास आना। गंगा माता ने मुझमें आर्य संस्कृति के जो कुछ संस्कार भरे हैं, वह तुम्हें सौंपे बिना मेरी देह छुटने वाली नहीं है। अब तुम सब जाओ और लड़कर अपने बल की परीक्षा कर लो। पीछे जो बाकी बचो, मेरे पास आ जाना।"

यह कहकर भीष्म चुप हो गये और सब अपने-अपने काम में लग गये।

१० / पितामह बाण-शैया पर

महाभारत का युद्ध समाप्त हुआ। भरी सभा में पांचाली का चीर खींचने वाले दुःशासन को अन्त में मृत्यु-शैया पर सोना पड़ा। सूत-पुत्र कर्ण पृथ्वी में धंसे हुए पहिए को निकालने का

प्रयत्न करता हुआ काल-कवलित हुआ आर्यावर्त की कितनी संस्कृतियों को अपने उदर में समा जानेवाले पितामह बाण-शैया पर सोये, अश्वत्थामा के समर्थ पिता द्रोण शस्त्र छोड़ बैठे और शत्रु की तलवार के सामने सिर झुका दिया। सिन्धुराज जयद्रथ का सिर उनके पिता की गोद में जा गिरा. वीर अभिमन्यु सारी कौरव सेना के छक्के छुड़ाकर भी अन्त में छह महारथियों के एक साथ प्रहार कर देने के कारण मृत्यु को प्राप्त हुआ शल्य, शकुनि, विकर्ण आदि अपनी-अपनी गति से मृत्यु के पथिक बने, आने वाले कल के लिए अनेक मनोरथों की रचना करके सोनेवाले धृष्टद्युम्न का आगामी कल उदित ही नहीं हुआ और इस समूचे युद्ध को रचनेवाला दुर्योधन समंतपंचक में अन्तिम श्वास लेकर ईश्वर के दरबार में पहुंच गया। पीछे रहे पाँचों पाण्डव और श्रीकृष्ण, अश्वत्थामा और कृपाचार्य, कुन्ती और गान्धारी और इस समूचे नाटक के छिपे हुए सूत्रधार अंधे धृतराष्ट्र।

अठारह अक्षौहिणी सेना के शवों पर अपना रथ हाँककर महाराज युधिष्ठिर हस्तिनापुर के अधीश्वर हुए। हस्तिनापुर पहुंचकर युधिष्ठिर ने गान्धारी के आँसू पोंछे, कौरव-स्त्रियों और अन्य अनेक वीरांगनाओं के आँसू पोंछे और अन्त में अपने भी आँसू पोंछे।

एक दिन युधिष्ठिर चारों भाइयों और द्रौपदी के साथ पितामह के पास गये। पितामह बाण-शैया पर पड़े हुए थे। सबने उन्हें प्रणाम किया और उनके पास जाकर बैठ गये।

पितामह ने युधिष्ठिर को सामने देखकर पूछा, "चिरञ्जीव युधिष्ठिर! सब कुशल से तो हो? हस्तिनापुर की गद्दी में कांटे तो नहीं रहे होंगे!"

युधिष्ठिर ने जवाब दिया, "महाराज ! आपसे क्या कहूं ? राजाओं की गद्दियाँ ऊपर से ऐसी मुलायम लगती हैं कि सब लोग सहज ही कह उठते हैं कि यह कैसी मुलायम है। लेकिन इस गद्दी पर बैठने वाला ही सानता है कि इस मखमल के भीतर कैसे काँटे गुंथे हुए हैं ?"

"इतने दिनों में ही यह अनुभव हो गया ?" पितामह ने पूछा।

"पहले दिन ही।" युधिष्ठिर ते जवाव दिया. "पितामह क्षमा करिये, मुझे तो अब ऐसा लगने लगा है कि यह राज-पाट छोड़कर कहीं भाग जाऊँ !"

भीष्म जरा शरीर तानकर बोले, "युधिष्ठिर ! सावधान! भागकर कहाँ जायगा ? इस अठारह अक्षौहिणी सेना का विनाश क्या अन्त में भाग जाने के ही लिए किया था ? तेरे मुँह से भाग जाने की बात निकलती ही कैसे है ? जो कुछ भोगने की लालसा से यह संहार रचा था, अव अच्छी तरह भोग, हस्तिनापुर की प्रजा पर अब तू राज्य कर।"

युधिष्ठिर ने कहा, "महाराज ! आज ऐसा प्रतीत होता है, मानो समूचे समाज के ह्दय पर कोई भार आ पड़ा हो।"

"तू जो कहता है वह ठीक है।" पितामह बोले, "सारे युद्धकाल में जनता में एक प्रकार का उन्माद छा गया था, उसके परिणाम-स्वरूप आज मूढ़ता का प्रकट होना स्वाभाविक हो है। तुम सबने जनता को धर्म-युद्ध की मदिरा पिलाकर उसमें उन्माद उत्पन्न किया था। अतः आज इस मूढ़ता को भी तुम्हीं लोग सहन करो।"

"किन्तु, पितामह ! मुझे तो आज समाज में सर्वत्र इतनी अधिक मात्रा में दीनता, व्यग्रता और अज्ञान आदि दिखाई देते

हैं कि जितने पहले कभी नहीं देखे गये थे। और जितनी दूर तक देखता हूं, एक ऊजड़ वीरान के सिवा और कुछ दिखाई ही नहीं देता।" युधिष्ठिर ने दीनता के साथ कहा।

"सुनो युधिष्ठिर! तुम पाण्डवों ने आज तक भिन्न-भिन्न अवसरों पर दुर्योधन की निन्दा करने में कोई कसर बाकी नहीं छोड़ी।" पितामह बोले।

"पितामह! मैंने? युधिष्ठिर ने कुछ आश्चर्य से पूछा।

"तूने नहीं तो तेरे भाइयों ने।" पितामह ने जवाब देते हुए कहा, "आज हस्तिनापुर का राज्य तुम्हारे हाथ में आया है, अतः दुर्योधन में तुम लोग जो-जो दोष निकालते थे, वे तुम्हारे में नहीं हैं, यह तुम्हें सिद्ध कर दिखाना चाहिए।"

"पितामह, यह तो बहुत बड़ी कसौटी आपने हमारे सामने रखी है।" युधिष्ठिर बोले।

पितामह ने जवाब दिया, "कड़ी कसौटी न रखूं? यही तो मनुष्य की सच्ची कसौटी है। मेरा अनुभव यह है कि जो लोग दूसरे के दोषों को बड़ा बताकर उसकी निन्दा करते हैं, वे स्वयं उसी स्थिति में आते हैं तो उससे कहीं अधिक निकम्मे और गन्दे साबित होते हैं। इसलिए युधिष्ठिर! यह कसौटी कितनी ही कड़ी होने पर भी तुझे उसपर खरा उतरना ही चाहिए। यदि ऐसा न हुआ तो जनता को तुझपर श्रद्धा न होगी। जब-तक लोगों को दुर्योधन के अधर्म राज्य और तुम्हारे धर्म राज्य में स्पष्ट अन्तर न दिखाई देगा, तबतक सबकुछ निरर्थक है।"

"पितामह, आपकी यह बात तो यथार्थ है," युधिष्ठिर ने कहा, "जिस तरह भी हो, मुझे जनता को इतनी प्रतीति करानी ही चाहिए; किन्तु पितामह आज जब मैं समाज पर दृष्टि डालता हूं तो मुझे समूचा समाज वीरान-सा प्रतीत होता है और मुझे

अपनी दिशा सुझाई नहीं पड़ती ।"

पितामह ने कुछ क्षण शान्त रहकर कहा, "वीरान-सा प्रतीत नहीं होता, बल्कि वीरान है ही । तू यह न समझ बैठना कि कुरुक्षेत्र के मैदान में अकेला भीष्म ही बाण-शैया पर पड़ा है । न तुझे यह समझना चाहिए कि कुरुक्षेत्र की युद्ध-भूमि में केवल अठारह अक्षौहिणी सेना के शरीर मात्र ही पड़े हैं । वास्तविकता यह है कि समाज की सारी संस्कृति ही आज बाण-शैया पर पड़ी है । इस अठारह अक्षौहिणी सेना के साथ आर्य संस्कृति भी पैर फैलाकर सो रही है और तेरे हाथों समाज में नव-भारत का जन्म होने को है । तुम पाण्डवों ने अभी अपना आधा काम पूरा किया है । तुम लोगों ने मुझे परास्त किया, द्रोण को हराया और कौरवों को धराशायी किया । यह तो हुआ तुम्हारा विध्वंस कार्य । किन्तु जबतक तुम संसार में नवीन सृजन नहीं करते तब-तक तुम विध्वंस-कार्य करके समाज के द्रोही बने रहोगे । इसलिए नव-भारत का सृजन करना तुम्हारा परम कर्त्तव्य हो गया है ।"

"यह महान् कार्य मैं कैसे कर सकूंगा?" युधिष्ठिर ने पूछा ।

भीष्म ने शान्ति एवं दृढ़ता से जवाब देते हुए कहा, यह काम तुझे ही करना है । मुझे तो अब गया हुआ ही समझ । मैं अपनी सारी विद्या अभी तुझे सौंपे देता हूं । तेरे पास यह जो तेरा भाई अर्जुन है, समझ ले कि वह नये युग का सृष्टा—प्रजापति—है । इस पर श्रीकृष्ण का हाथ है और यह युग-पुरुष—श्रीकृष्ण—नवीन भारत का सृजन करने के लिए ही अवतरित हुआ है । इसलिए तुझे जरा भी घबराने की आवश्यकता नहीं । जहां आज तुझे रूखा और वीरान दिखाई देता है, वहां कल ही हरे अंकुर दिखाई देने लगेंगे और परसों हरियाली उगी दीखेगी । आज जहाँ-जहाँ तुझे अन्धाधुन्धी और अव्यवस्था दिखाई पड़ती

है, वहाँ नया प्रकाश पड़ते ही व्यवस्था पैदा हो जायगी। तेरा काम यह प्रकाश देने का है। युधिष्ठिर! तुझे यह नहीं भुला देना चाहिए कि पुराने जीर्ण-शीर्ण समाज को झकझोरने वाले के लिए नये समाज के सृजन का कर्त्तव्य अनिवार्य हो गया है।"

"पितामह! आप जो कहते हैं, वह मैं अच्छी तरह जानता हूं। लेकिन प्रश्न यह है कि मैं अकेला ही यह सब किस तरह कर सकूंगा?" युधिष्ठिर ने पूछा।

भीष्म ने कहा, "अकेला ही क्यों? तेरे भाई तो हैं ही, और यह पांचाली भी है। देवी पांचाली!"

"आज्ञा, पितामह?" द्रौपदी ने आगे आकर कहा।

भीष्म उसकी ओर देखते हुए बोले, "इन पाण्डवों ने एक महाभारत तो पूरा किया किन्तु समाज में नवीन प्राण-प्रतिष्ठा का इससे भी कठिन महाभारत अभी पूरा करना शेष है और इसमें महाराज युधिष्ठिर को तुम्हारी आवश्यकता होगी।"

"पितामह! हम अबलाएँ क्या कर सकेंगी?" द्रौपदी ने कहा।

"अबला?" भीष्म ने जरा तीव्र स्वर से कहा, "द्रौपदी और अबला! पांचाली, क्या तू समझती है कि यह युद्ध पांडवों ने अकेले जीता है?"

"अवश्य, ऐसा ही प्रतीत होता है, पितामह!" द्रौपदी बोली।

"यह तेरी भारी भूल है," पितामह ने जवाब देते हुए कहा, "पांचाली! तू यह कैसे भूल जाती है कि अर्जुन के बाणों को तीव्र और भीम की गदा को चपल बनाने वाली तू ही थी। द्रुपद-सुता, पीछे रहकर पाण्डवों की क्रोधाग्नि में घृत होमने वाली तू न होती तो यह अग्नि कभी की बुझ गई होती। भला तुझे अबला कौन कहेगा?"

"सारा समाज कहता है।" द्रौपदी ने विनीत स्वर में कहा।

"इस समाज को सुधि ही कहाँ है ?" भीष्म ने जवाब दिया, "पांचाली ! यह निश्चय रख कि नये युग को तुम्हारी शक्ति का परिचय हुए बिना नहीं रह सकता। जिस नवीन युग की भाग्य-रचना कभी की हो चुकी है, उसमें तुम्हारा महिला-वर्ग भारी हिस्सा अदा करने वाला है। नवीन भारत में स्त्री-पुरुषों के वर्तमान व्यवहार में भारी उथल-पुथल होगी और मानव के सारे जीवन की नई रचना होगी। इसलिए इस नवीत रचना में तुम महाराज युधिष्ठिर की सहायता करना और यह सिद्ध करना कि ईश्वर की सृष्टि में स्त्री-जीवन पुरुष-जीवन जितना ही नहीं, बल्कि उससे भी अधिक आदर योग्य है।"

द्रौपदी ने सिर नवाकर कहा, "जैसी आपकी आज्ञा। अब आपकी साँस चढ़ आयी है। बोलना बन्द कर दें तो अच्छा हो।"

"अभी एक बात शेष रह जाती है", साँस खींचते हुए भीष्म ने कहा, "अर्जुन!"

"आज्ञा, पितामह ?" अर्जुन ने पूछा।

"जीवन की अन्तिम सीढ़ी पर से आज्ञा क्या हो सकती है ?" भीष्म ने श्वास भरते हुए कहा, "चिरंजीव अर्जुन ! प्रात:काल नया सूर्य उदित होगा। इस नये सूर्य के तेज को झेलने वाला तो तू है। इसलिए मैं अब प्रस्थान करता हूं। नये प्रकाश के आने पर भी मैं पड़ा रहूं, यह कैसे हो सकता है ?" पुत्र, बड़े भाई की मदद करना और आज जिस तरह नवीन प्रकाश देखकर मैं प्रयाण करता हूं, उसी तरह तुम सब नये प्रकाश की किरणों के दिखाई पड़ने पर अपना-अपना रास्ता पकड़ लेना।"

पितामह, क्या आप जायेंगे ही ? अपना सम्बन्ध क्या। अब समाप्त हो गया ?" युधिष्ठिर ने पूछा।

भीष्म ने शान्ति से उत्तर दिया, "युधिष्ठिर, यह क्या कहता है ? क्या मानव के सभी सम्बन्ध ऐसे ही नहीं हैं ! अठारह अक्षौहिणी सेना के जाने पर अकेले मेरी क्या बिसात है? जाओ, सुख से राज्य करो और धर्म का दीपक निरन्तर प्रदीप्त रक्खो।"

कहते-कहते भीष्म ने आँख बन्द कर लीं।

गंगादेवी के पुत्र, आर्य संस्कृति के प्रतिनिधि, कुरुकुल के आधार-स्तम्भ, पिता की खातिर सुख-वैभव को लात मारने वाले, अद्वितीय धनुर्धारी देवव्रत, उग्र प्रतिज्ञाधारी भीष्म बाण-शैया पर सो गये और कुछ ही देर बाद पूर्व दिशा में नवीन दिवस के नव-प्रभात का संचार हुआ।

□ □
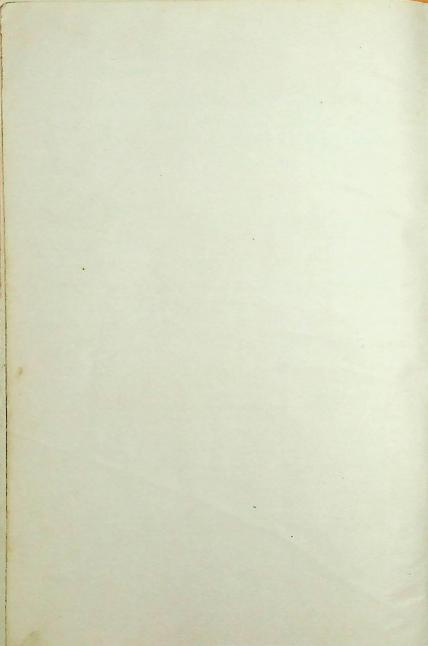
'मण्डल' द्वारा प्रकाशित

महाभारत-पात्र-माला

□□

- सूतपुत्र कर्ण
- पांचाली द्रौपदी
- महारथी अर्जुन
- धर्मराज युधिष्ठिर
- कुंती : गांधारी
- दुर्योधन
- महावीर भीमसेन
- द्रोण : अश्वत्थामा
- धृतराष्ट्र
- श्रीकृष्ण
- पितामह भीष्म

□□